शब्द सेतु

दस भारतीय कवि

शब्द सेतु

दस भारतीय कवि

संपादक

गिरधर राठी



साहित्य अकादेमी

Shabda Setu: Das Bharatiya Kavi An Anthology of Ten Contemporary Indian Poets in Hindi translation. Edited by Girdhar Rathi. Sahitya Akademi, New Delhi (1994).

ISBN 81-7201-773-1

प्रथम संस्करण 1994
मूल्य: 40 रुपए

आवरण: करुणानिधान

प्रकाशक : **साहित्य अकादेमी**, रवीन्द्र भवन, 35 फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग: 'स्वाति', मंदिर मार्ग, नई दिल्ली 110001

क्षेत्रीय कार्यालय:
जीवन तारा बिल्डिंग,
23 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053

गुना बिल्डिंग्स, द्वितीय तल,
नं. 304-305, अन्ना सलाई, तेनामपेट, मद्रास, 600 018

ए. डी. ए. रंगमंदिर, 109, जे. सी. रोड, बंगलौर 560 002

172, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400 014

लेज़र कंपोज़िंग: प्रिन्टलाइन, 12-एच, न्यू दरियागंज रोड, नई दिल्ली 110 002
मुद्रक: नवचेतन प्रिंटर्स, 1-ई/2 झंडेवालान एक्सटेंशन, नई दिल्ली 110 055

अनुक्रम

1

प्रकाशकीय

दिसंबर 1993 में नई दिल्ली में 'कविता 93' शीर्षक से एक भारतीय काव्योत्सव आयोजित हुआ था। भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के संस्कृति विभाग, पोएट्री सोसाइटी (इंडिया) और इंडिया इंटरनैशनल सेन्टर नई दिल्ली के सहयोग से आयोजित इस उत्सव की समिति के अध्यक्ष श्री यू. आर. अनंतमूर्ति ने, जो साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष है, सुझाव दिया कि इस अवसर पर साहित्य अकादेमी भी एक कविता-अनुवाद कार्यशाला या शिविर का आयोजन करे। 'कविता 93' में आमंत्रित तीसेक कवियो में से दस कवियों को साहित्य अकादेमी ने आमंत्रित किया और उत्सव से तीन दिन पहले एक कार्यशाला आयोजित की। संख्या में केवल दस कवि थे, इसलिए कि व्यवस्था सुचारु रह सके। मोटे तौर पर इस तरह देश के प्राय: सभी भौगोलिक क्षेत्र समेटे जा सके है।

इस कार्यशाला की नवीनता यह है कि आमंत्रित कवियों के साथ उन की भाषा के जानकार एक-एक अनुवादक तो बुलाए ही गए, हिन्दी के यशस्वी और प्रतिभाशाली कवियो से भी आग्रह किया गया कि वे मूल कवि और अनुवादक के साथ बैठ कर अनुवाद प्रक्रिया मे भाग ले, और अनुवादो को अतिम रूप दें। सौभाग्य से स्वयं अनुवादकों में भी अनेक व्यक्ति अपनी-अपनी भाषा के प्रतिष्ठित कवि हैं। दूसरी ओर, अनेक अहिन्दी कवि भी ऐसे थे जिन्हें हिन्दी की अच्छी जानकारी थी, और कुछ कवि संस्कृत की पृष्ठभूमि के कारण भी हिन्दी मे हो रहे अनुवादों का सार बहुत कुछ समझ पा रहे थे। यह कहा जा सकता है कि इस नए प्रयोग के तहत हुए इन अनुवादों में प्राय: तीन-तीन कवि-अनुवादकों की सम्मति है। तीन-तीन व्यक्तियो के ये दल अलग-अलग बैठ कर अनुवाद करते रहे। कार्यशाला के निर्देशक और संयोजक गिरधर राठी ने, जो साहित्य अकादेमी के संपादक (हिन्दी) है, यथासंभव, बिना हस्तक्षेप किए, इस कार्य में मदद की।

'उत्सव 93' के आयोजको के सहयोग के प्रति आभार व्यक्त करते हुए हम सभी सम्मिलित कवियो और अनुवादकों का धन्यवाद करना चाहेगे। तीसरे दिन अंत में आधे दिन इस कार्यशाला के अनुभवो पर आपस मे विचार-विमर्श भी हुआ जिस में

अनुवाद-प्रक्रिया मे उठे प्रश्नो एवं समस्याओ पर खुल कर बातचीत हुई। शाम के समय मूल और अनुवाद का एक चयन कवियों तथा उन के अनुवादकों ने या संयोजक कवियों ने पढ़ कर सुनाया, जिस मे नगर के अनेक गण्यमान्य श्रोता मौजूद थे। हमें प्रसन्नता है कि अकादेमी अब यह सग्रह पाठको को भेट कर रही है। इस कार्यशाला के अनुभवों का लाभ उठा कर भविष्य मे भी इन भाषाओ तथा अन्य भारतीय भाषाओं के कवियो का प्रामाणिक काव्यानुवाद हिन्दी तथा अन्य भाषाओ में सुलभ कराने की इस क़िस्म की प्रक्रिया साहित्य अकादेमी जारी रखेगी, इस विश्वास के साथ,

इंद्रनाथ चौधुरी
सचिव, साहित्य अकादेमी

आमुख

वर्ष 1993 के अंत मे आयोजित काव्यानुवाद कार्यशाला या शिविर एक नया प्रयोग था। दस विभिन्न भारतीय भाषाओ के दस कवियों को, उन की भाषाओं के जानकार दस हिन्दी अनुवादको को और हिन्दी के जाने-माने दस कवियों को तीन दिन साथ-साथ बैठ कर प्रत्येक आमंत्रित अहिन्दी कवि की, दसेक पृष्ठों मे प्रकाश्य कविताएँ चुन कर हिन्दी में अनुवाद करने का आमंत्रण साहित्य अकादेमी ने दिया था। कन्नड कवि डॉ. सिद्धलिंगैया और मलयाळम के हिन्दी कवि अनुवादक डॉ. अरविन्दाक्षन के अलावा अन्य सभी आमंत्रितों ने इस 'कार्यशाला' मे भाग लिया। उक्त दो व्यक्ति व्यस्तता के कारण नहीं आ सके, अतः श्री अजय कुमार सिंह ने मैसूर लौट कर ही श्री सिद्धलिंगैया के साथ उन के अनुवाद किए जिन्हे एक नज़र श्री इब्बार रब्बी ने भी देखा, हालाँकि ये अनुवाद अंततः कवि-अनुवादक-द्वय के ही है। मलयाळम के लिए डॉ. के. सच्चिदानंदन ने समय निकाल कर श्री राजेन्द्र धोड़पकर की मदद की जिन्होने अनुवाद को अंतिम रूप दिया।

शेष सभी अनुवाद कार्यशाला मे हुए है, हालाँकि कविता की तरह अनुवाद-प्रक्रिया भी कुछ ऐसी ही है कि वह 'कभी ख़त्म नही होती'! उदाहरण के लिए, कार्यशाला मे अनूदित कविताएँ जब गुलाम मोहम्मद शेख को पुनः भेजी गईं—क्योकि अनेक स्थलों पर श्रीमती वर्षा दास और श्री विष्णु नागर सहमत नहीं थे—तो शेख ने कुछ संशोधनो के साथ अनुवाद लौटाए। लेकिन उन्हें पढ़ने पर भी हमें पूरा संतोष नही हुआ। अतः विष्णु नागर और वर्षा दास से पुनः विचार-विमर्श किया गया, फिर से संशोधन हुए, और फिर शकाएँ रह जाने के कारण शेख के साथ बैठने पर यह पाया गया कि सुधार की गुंजाइश ही नहीं, ज़रूरत भी थी।

यह उदाहरण कविता के अनुवाद की जटिल, लंबी, सूक्ष्म और कठिन प्रक्रिया जताने भर के लिए है, अनुवादको या संयोजक हिन्दी कवियों की क्षमता या निष्ठा पर किसी तरह के कटाक्ष के लिए नहीं। दस-बारह पृष्ठो की सामग्री के अनुवाद के लिए तीन दिन पर्याप्त तो हैं, पर शायद अनुवाद को अंतिम रूप देने के लिए उसे दुबारा-तिबारा देखने का अवकाश अवश्य रहना चाहिए। दरअसल इसी कारण यह संग्रह मार्च मे

छपने के बजाय अब अगस्त में छप पा रहा है। संयोजक-संपादक ने अनुवादों से कोई बड़ी छेड़-छाड़ किए बग़ैर कुछेक कविताओं में थोड़ा-बहुत सुधार ज़रूर किया है, इस आशा से कि इस तरह के अनुवाद मूल कविता की आंतरिक भंगिमा, अंतर्वस्तु, भाषा-विन्यास, शैली इत्यादि के अधिक निकट होंगे। इस मामूली परिवर्तन का साहस भी उसे इसलिए हुआ कि कार्यशाला मे अनुवाद-प्रक्रिया को थोड़ा-बहुत देखने का अवसर उस ने जुटा लिया था।

अनुवाद के इस नए प्रयोग का प्रयोजन यह भी था कि समान पृष्ठभूमियों, समान अनुभव-स्रोतो और प्राय: समान अभिव्यक्ति-रूपों के बावजूद हर भाषा में, और उस में हर कवि की, बल्कि प्रत्येक कविता की बुनावट मे अनगिनत बारीकियाँ होती है, जिन्हें पहचाने बग़ैर सच्चा अनुवाद हो नहीं सकता। समर्थ अनुवादक निश्चय ही मूल भाषा से—और कभी-कभी दूसरी भाषाओं में प्राप्त अनुवादों के माध्यम से भी—सुदर-सटीक-सुघड़ अनुवाद प्रस्तुत कर दिया करते है। विदेशी भाषाओ में तो ऐसा होता ही रहा है जिन से प्राय: बज़रिया अंग्रेज़ी ही अनुवाद हुए है; परस्पर-अनुवाद के लिए अंग्रेज़ी अनुवादों को माध्यम बनाया जाता रहा है। यह गुलामी अब विदेशी और देशी दोनो रचनाओं के अनुवाद के मामले मे तेज़ी से टूट रही है। यह कार्यशाला इसी दिशा में एक और प्रयत्न था जहाँ मूल भाषा से ही सीधे अनुवाद की प्रक्रिया अपनाई गई।

केवल अनुवादक पर अनुवाद का भार रख देने पर कभी-कभी या शायद अक्सर यह हुआ है कि अनुवाद मूल से काफ़ी अलग, एक अलग क़िस्म की व्याख्या हो जाया करता है—अनुवादक के व्यक्तित्व-कृतित्व की छाप लिए हुए। अपने आप में यह पुनर्रचना भी शायद बुरी न हो; पर यह जानने की उत्सुकता सभी रसिको में होती है कि आख़िर कवि ने अपनी मूल भाषा मे काव्य-रचना की जद्दोजहद किस तरह निभाई? नया अर्थ, नया आस्वाद रचने या पाने के लिए अपनी भाषा से उस की मुठभेड़ कैसी रही है?

इसीलिए यदि मूल कवि का साथ सुलभ हो तो उस से बातचीत बेहद उपयोगी होती है। इस कार्यशाला में हीरेन भट्टाचार्य, अरुण कोलटकर और अनुराधा महापात्र के अनुवाद के समय कवि की उपस्थिति बारबार अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई। अन्य कवियों के साथ भी दरअसल यही हुआ कि—भले ही वे हिन्दी न जानते रहे हों—अनुवादक तथा संयोजक हिन्दी कवि शब्दो, पंक्तियों और यहाँ तक कि बिम्बो के जो आशय समझा रहे थे, कविता का 'मूल स्वर' जिस रूप में 'पकड़' रहे थे, उस में कवि के हस्तक्षेप

से बहुत फ़र्क़ पड़ा। मूल कवि की मंशा सर्वोपरि है या नहीं, इस बहस में पड़े बग़ैर भी हम शायद सहमत ही होंगे कि अपनी कविता की कवि की अपनी समझ का क्या महत्त्व है।

अनुवादकों के साथ संयोजक के रूप में यशस्वी या नए कवियों का रहना भी अत्यंत उपयोगी साबित हुआ। प्रायः अनुवादक मूल (भाषा) के अति-निकट रहने के कारण 'शब्दानुवाद' की सीमा में बँधने लगता है, जबकि तटस्थ कवि-संयोजक हिन्दी में प्राप्त अनुवाद को हिन्दी की प्रकृति की दृष्टि से देख कर बेहतर (और वास्तव में मूल के निकटतर) शब्द-संयोजन का सुझाव दे पाता है। तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति अक्सर ऐसे नए कोणों से कविता को उघाड़ने लगती है जो शायद एकाकी अनुवादक या केवल कवि और अनुवादक की जोड़ी अपने आप न कर पाए। अरुण कोलटकर के समर्थ अनुवादक-कवि चंद्रकात पाटील के अनुवादों मे संयोजक हिन्दी कवि विष्णु खरे ने एक तरह से 'मौलिक' परिवर्तन जगह-जगह किया—जिस से कोलटकर का 'मूल स्वर' सचमुच पकड़ में आ सका। श्रद्धा-भक्ति-मंडित गुरु-गंभीर काव्यरूपों और शैलियो के साथ कोलटकर की छेड़छाड़ कोरी खिलवाड़ नहीं है, बल्कि उन का यह जोखिम-भरा कवि-कर्म है जो व्यंग-विद्रूप से कही आगे जा कर आज के समय की आंतरिक विडंबना-पीड़ा को उद्घाटित करता है।

अनुराधा महापात्र भी अनुवाद की दृष्टि से अत्यंत जटिल कवयित्री हैं, हीरेन भट्टाचार्य भी, गुलाम शेख भी। लेकिन इन कवियों की अपेक्षा अधिक 'सरल' लगने वाले कवियों —जैसे जयप्रभा, सिद्धलिंगैया, सुरजीत पातर, सावित्री राजीवन— की मूल कविता को हिन्दी मे उतारना 'सरल' नहीं है। कही कथन की भगिमा, तो कही शब्दो मे भी अर्थगत और प्रयोगगत भिन्नता; कहीं भाषा के अपने संगीत की अहमियत तो कहीं बिम्बों के प्रयोग मे सूक्ष्म-से अंतर आदि ऐसे प्रश्न है जो अनुवादकों को घंटों और दिनों और महीनों तक व्यस्त रख सकते है। शेख की कविता में परछाईं और परछावाँ (साया) के प्रयोग मे सावधानी न रखी जाती तो कविता का एक बहुत बड़ा कथ्य-अंश नज़रों से ओझल ही रह जाता। जयप्रभा जिस तरह से 'चित्रांकन' करती हैं और संस्कृत-मूल के तेलुगु शब्दो का प्रयोग करती है, उन पर लंबी बहस के बग़ैर कवयित्री के कई मूल आशय अनुवाद में नहीं आ पाते।

संयोजक-संपादक ने कार्यशाला के दौरान 'हस्तक्षेप' कम-से-कम किया, लेकिन विभिन्न त्रिको (कवि-अनुवादक-सयोजक कवि) के साथ बैठ कर बहुत-कुछ सीखने का अवसर उसे मिला। निश्चय ही यह अनुभव कृतज्ञता-ज्ञापन के लायक़ है। विभिन्न

त्रिपुटियों में होने वाले प्रश्नमूलक आदान-प्रदान के भी कई रंग देखने को मिले। कुछ कवि अपने मूल पाठ को यथावत् रखने के अतिशय आग्रही थे। कुछ अनुवादक और यहाँ तक कि संयोजक कवि भी मूल कविता को अपने ही रंग-अर्थ-व्याख्या में रँगने के लिए अड़ते हुए देखे गए। इस से यह भी स्पष्ट हो गया कि हर किसी कवि का अनुवाद हर कोई अनुवादक कर नहीं सकता। सहानुभूति से भी कुछ आगे बढ़ कर समानुभूति, और अभिव्यक्ति-कौशल (या इसे जो भी कहें, काव्य-कौशल, भाषा-कौशल) के साथ-साथ प्रयोगशीलता या जोखिम उठाने का दम-ख़म भी अनुवादक में होना ज़रूरी है। किस कवि के लिए कौन-सा अनुवादक उपयुक्त होगा, इस का निश्चय पहले से किया नहीं जा सकता। कभी-कभी हम अपने चुने हुए कवि से भी न्याय नहीं कर पाते। अतः किसी कवि के सही अनुवादक की पहचान के लिए भी इस तरह की कार्यशालाएँ लाभदायक हो सकती है।

यह कहना ज़रूरी नही है कि संग्रहीत कवि हर दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न है। अनेक भाषाएँ, पीढ़ियाँ, कवि-दृष्टियाँ, शैलियाँ, मूल्यगत आग्रह यहाँ एक ही जगह एकत्र है। पर है ये सभी हमारे ज़माने मे हमारे देश के सशक्त स्वर--कुछ अत्यंत प्रतिष्ठित, तो कुछ नवोदित या शायद अभी उदीयमान—जो कविता के दस द्वार या दस दिशाएँ खोलने के अलावा समृद्ध विविधता के उदाहरण भी है। विविधता भारतीय कविता मे सहज ही दीखती है।

यह किसी भी अर्थ मे प्रतिनिधि संग्रह नही है; वह अभीष्ट भी नहीं था। प्रस्तुत संग्रह जैसे अनेक सग्रहों की आवश्यकता है। कई भाषाएँ इस में नहीं आ सकीं, सो केवल इसलिए कि 'कार्यशाला' फलप्रद बनी रहे; भाषाओ और कवियों की संख्या इसीलिए सीमित रखी गई। यों चारो दिशाओं और मध्य देश की कविता की थोड़ी-बहुत बानगी इस में अवश्य है; लेकिन किसी और संग्रह में शेष भाषाएँ पुनः इस वृत्त को आलोकित कर सकती है।

नई दिल्ली, 13 अगस्त 1994 गिरधर राठी

सिद्धलिंगैया

कन्नड से अनुवाद : कवि के साथ अजय कुमार सिंह
(सहयोगी वरिष्ठ हिन्दी कवि: इब्बार रब्बी)

देखा एक दिन मैं ने अपनी प्रियतमा को

हत्या की पूर्ववर्ती रात
पकड़ लिए उन्होंने सूरज और चाँद
बंद कर दिया तिजोरी में
लपेट कर तिरंगे को ठूँस दिया उस के मुँह में
और छीन ली उस से उस की आवाज़

हाथों में तलवार लिए
झपट पड़े उस पर दसियों
और उठा लिया उसे पके हुए फल की तरह
चाहती थी वह उन के मुँह पर थूकना
उन आने वालों के
नहीं थे कोई चेहरे

उमड़ कर गड़प लेती है जो सात समुद्रों की तरह
हो गई वह शिकार उन की हवस की ज़ंजीरों से जकड़ी
लड़ती रही वह शिकारी के फेंके गए जाल से
मशालों के पहरों में हो गई अदृश्य

उस की जीवन-बेल फ़ौलादी जकड़ में फँसी
बहाते-बहाते ख़ून गिर पड़ी धरती पर
अँधेरे के राक्षस लगाते रहे बाज़ी
खेलते रहे उस की आँखों के कंचों से

तौला उन्होंने उस का मंगलसूत्र
नशे में धुत्त चिल्लाते रहे
मारवाड़ी द्वारा दिए गए रेट के मुताबिक़
शरीर की पँखुरियों को एक-एक मसल कर
उठा ले गए उसे कहीं और

देखा एक दिन मैं ने अपनी प्रियतमा को

देखा मैं ने अपने को दर्पण में

सहस्त्रों सहस्त्र नदियाँ

कल के दिन
मेरे लोग
आए चलायमान पर्वत-से

काला चेहरा, चाँदी की दाढ़ी, जलती हुई आँखें
दिन-रात को चीरा नींद को मारी लात
कंबल कराह उठे क्रोध की आँच से
हिल उठी ज़मीन उन के पागल नाच से
चींटियों की तरह बहती हुई पंक्तियाँ
शेर-चीते-से दहाड़ते
'मुर्दाबाद मुर्दाबाद ऊँच-नीच मुर्दाबाद'
'सदा सदैव मुर्दाबाद धनवानों का सुख मुर्दाबाद'
लाखों लाख काले साँप बाँबियाँ छोड़ निकल आए-से
नगरी भर बहे
पाताल तक उतर गए
आकाश तक कूद गए
सड़कों-गलियों में, बाड़ के पेड़ों के पीछे
चौधरी के छप्पर में, मुखिया के तख़्त पर
हर जगह मेरे लोग
लबालब भर कर स्थिर हुए पानी-से

जैसे ही बोले ये, मुँह बंद हुआ उन का
सुनते ही इन की ऊँची आवाज़, सूख गई ध्वनि उन की
क्रांति के झंझावात में हाथ उठाते-हिलाते मेरे लोग
छड़ी से पीटने वाले लोगों की गर्दन जा धर दबोची

पुलिस की लाठियाँ छुरियाँ एजेन्टों की

वेद-शास्त्र-पुराण, बंदूकों के तहख़ाने
सूखे पत्ते-से कूड़े-करकट-से लहराते हुए बहे

संग्राम के सागर की तरफ़
सहस्रो सहस्र नदियाँ

बात करनी है

कैक्टसों के काँटों, बिना दूध वाली पटार
शरीर चीरने वाली भटकटैयों से
थोड़ी बात करनी है

उधार की रोशनी वाले चाँद से
छोटा-सा सवाल पूछना है
कोमल गुलाबों को छुड़ाना है
काँटों के चंगुल से

बिन पानी के कुएँ, बिन आवाज़ के मंत्रिगण
शिकाकाई की झाड़ियों की तरह डोलते-फिरते सिपाही
ओ दुनिया मै तुम्हें देखना चाहता हूँ
भाषणों की तरह गड़गड़ाते सफ़ेद बादलों से
बहती नही हैं नदियाँ
पनपती नहीं है हरियाली

समयानुसार होती बरसात को रोक दिया है किस ने
काट रहा है तारे इंद्रधनुष से कौन
किस ने छुपा लिया है सूरज को पल्लू में
बिखरे हुए अंधकार को बढ़ा रहा है कौन

आम और कटहल की फलवानता तोड़ कर
कौन जन रहा है आत्माओं को
जो न स्त्री हैं न पुरुष

ओ संसार मैं तुम्हें देखना चाहता हूँ
बात करनी है तुम से

मेरे लोग

भूख से मरने वाले, पत्थर ढोने वाले
पिटने वाले, पिटते-पिटते गिर पड़ने वाले
हाथ पैर छूने वाले
सिर पर हाथ रखवाने वाले *
कैसे तो है भक्त भाई देखो मेरे लोग

खेत जोतने वाले, बोने वाले, फ़सल काटने वाले
पसीना बहाने वाले, घाम मे उबलने वाले मेरे लोग
ख़ाली हाथ घर आने वाले, उसाँस ले कर बैठ जाने वाले
पेट काट कर जीने वाले मेरे लोग

मंज़िलो पर मंज़िले खड़ी करने वाले, बँगले बनाने वाले
नीव के पत्थरो मे फँस जाने वाले मेरे लोग
गलियों गलियों फिरने वाले, बिना आवाज़ वाले
अंदर ही अंदर रोनें वाले मेरे लोग

हमेशा ब्याज देते रहने वाले
भाषणों की आग मे जल कर भस्म हो जाने वाले मेरे लोग
परमात्मा का नाम ले पकवान खाने वालों के
जूते-चप्पल सिलने वाले मेरे लोग

सोना निकालने वाले
अनाज देखने को भी नसीब न होने वाले

---

* आशीर्वाद लेने की मुद्रा में

कपड़े बुनने वाले नंगे शरीर घूमने वाले
जैसा कहा जाए वैसा ही करने वाले मेरे लोग

हवा पर जीते हैं मेरे लोग

वहीं बैठे हैं

एक

एक गाँव, गाँव में नहीं हुई बारिश
बूटो की आवाज़, गोलियों की आवाज़
तलवारों के भाँजने की आवाज़, कोलाहल
गाँव में न हुई कोई फ़सल

वर्षा का देवता ग़ुस्से से चला गया देशांतर
खो ही गई सुंदरता
मुस्कुराती हुई चमेली के मुँह पर की कला
चली गई सुंदरता

ग़रीब की गाय ने किया नहीं गोबर
लीपा नहीं गया चबूतरा
ब्याह के घर में ज़ेवर के झगड़े में
बिठाए नहीं गए पटे पर (दूल्हा-दुल्हन)

अनाज देने में असमर्थ सैकड़ो देवता
चले गए, जा पड़े अंधे कुओं में
अनाज देने मे असमर्थ राजा का दरबार
चलता रहा लगातार
मुँह बाए फिरते है ग़रीब

ख़ाली-पेट लोगों के रूखे-सूखे सिरों पर
नाचते हुए आते हैं काले तीर

चोरी हो सकती है, कोई दे सकता है उलट कर जवाब
(निपटने को)
मैदान में तैयारी करते है तलवार भाँजने की

चारों ओर हरी वर्षा, उगती है आग की फ़सल
काले लोगों के सिरों पर सफ़ेद-सफ़ेद मटके
पाताल की गहराई में आशा की हथकड़ी से बँधे
कराहते, लोटते-पोटते है लोगों के झुंड

आओ ओ वर्षा के देव
धो डालो जीने का दर्द
आसमान फाड़ कर आओ हमारे पास
दिखाओ हमें प्यार और ख़ुशी की रौशनी
घेरे हुए हैं हमें बाड़े

ढहा कर उन्हें आओ वर्षा के देव
बरसो, बरसो, बरसो ओ देव
सूख गया है हृदय-सागर
ग़रीबों की आँखों में नहीं है आँसू
बरसो मूसलाधार वर्षा के देव

लोगों ने देखा इधर-उधर, देखा आसमान की ओर
ग़रीबों के बर्तन-भाँडे, कढ़ाई, पतीली और तसला सब
चले गए मुखिया के घर

भूल जाते हैं दिन और रात
जीने की भी नहीं है कोई गारंटी
ज़मीदार के घर के आसपास
घुप्प अँधेरी रात में
काले लोग पीटते हैं ढोल-नगाड़े
नाचते और गाते हैं
मानो यही ठीक है कि नहीं हुई बारिश

बरसो मूसलाधार ओ वर्षा के देव
फूलों की क्यारियों में पानी नही है
गेंदे की क्यारियो में पानी नही है
गली के नलो में पानी नहीं है
नलो को पीने के लिए पानी नहीं है
आओ ओ वर्षा के देव
आ कर बरसो ओ देव

ख़ाली बर्तन और ख़ाली मटके लिए
नाज-पानी की खोज में
गली-गली फिरते है लोग
थक कर अगर कोई बैठ जाए किसी की बाड़ की छाँहं
गली मे खड़ा हो जाए
दौड़ कर आते हैं, डराते-धमकाते है, टेंटुआ पकड़ लेते है
तलाशते हैं औरतों की धोती की गिरहें
पुरुषो के घुटन्नों की जेबों मे हाथ डालते हैं
फिर छोड़ देते है
ऐसे कुछ लोगो के झुंड
जहाँ देखो वही
हर तरफ़ उन्हीं के चेहरे

दो

एक दिन होती है मूसलाधार बारिश
दरवाज़ों और खपरैलो के छेदो से चमकती है
कड़कड़ा कर गिरती है बिजली
सुनाई नहीं पड़ती एक को दूसरे की बात
घनघोर बारिश
सड़कों-गलियो में आदमी की ऊँचाई जितना बहता है पानी
मेरे ऊपर से निकल जाता है
भीग गया मैं लत्ते की तरह

मकान के ऊपर से बहता पानी
थोड़ा-थोड़ा कम होता था कि
भड़भड़ाने लगा कोई मेरा दरवाज़ा
छत की छोर के खपरैल, खिड़की, बर्तन-भाँडे
धड़धड़ाने लगे
लोहे के बूटों की आवाज़
फट् चोट की आवाज़
मैं धूल चाटने लगा
खोपड़ी के ऊपर की खपरैल, दरवाज़े और खिड़की की ओर से
चार लोग
भीगे हुए घर में
अर्रा कर आ गए
एक-एक के तीन-तीन आँखें
लाल, सफ़ेद, हरी
दह-दह जलतीं
उन आने वाले लोगों ने
मेरा पहुँचा पकड़
मरोड़ते हुए 'थैंक्स' कहा
अपरिचित एकदम
कुछ भी समझ में नहीं आया
भयभीत हो गया

पाँच साल पहले यही लोग
आए थे माँगने मेरा वोट
क्या इन्होंने ही नहीं दिए थे मुझे नोट
कर्ज़ न चुका पाने पर
तोड़ी नहीं थी क्या इन्होंने ही मेरा हड्डियाँ
जो सुनते नहीं हैं इन की बात
लटका देते है उन्हें पेड़ से
साँप की रस्सी गले मे डाल कर

क्या यही नहीं चाकू-छुरियों के दोस्त
मंत्रियों के साथ जो करते हैं तंत्र

क्या यही नहीं हैं महात्मा गांधी के उत्तराधिकारी
राम का नाम जपते हुए
क्या यही नहीं है वे लोग
जो अपने निक्करो, टोपियो और थैलों में
लाए हम ग़रीबों की खोपड़ियाँ

भाग यहाँ से—इशारा किया उन्होंने मुझे
उठ न सका मैं हिलाया अपना सिर
(मना करने की मुद्रा में)
ऐसे नहीं आएँगे ये स्साले रास्ते पर
घसीटा उन्होंने मुझे गली तक
जहाँ काले नाग, अजगर और धामिन-सा
बह रहा था अभी भी पानी
मेरे शरीर से चूता ख़ून
जा मिला पानी से और बना दिया उसे लाल

गली-रस्तों में खेलते बच्चों का
सुनाई पड़ता है गीत
चलो बटोरें ओले हम
चलो हम खेले पानी में
चलो इकट्ठे हों सब दोस्त
और बनाएँ बालू के घर
कुआँ हम खोदे हाथों से
देखें निकलता है पानी
चलो बटोरें ओले हम
चलों हम खेलें पानी मे

क्या है, क्या है, क्या यह शोर, क्या है क्या है क्या झगड़ा
कहते हुए बच्चे

सिर पर पैर रख भाग गए

मुझे लगा कि वे मेरे टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे
मेरे हाथ, मेरे पैर, मेरी दस उँगलियाँ और मेरे अँगूठे
हज़ारों मेरे बाल, मेरी नाक, मेरा मुँह
मेरी बत्तीसी उड़ रही थी हवा में
उन्होंने बना दिया मेरी हड्डी का चूरा
अपने बूटों तले

मेरा धैर्य ख़त्म हो चुका था
मेरा अध्ययन-मनन काफ़ूर हो गया
बची रही मेरी आवाज़
'मुर्दाबाद' 'मुर्दाबाद', मैं उन्हें डराने के लिए चिल्लाया
'हूँ' उन्होंने कहा
निकाला एक सूजा और सुतली
सिल दिए मेरे होंठ
और लगा दिया ताला

गर्दन मरोड़ते हैं
कूटते हैं सिर
आवाज़हीन गले में
सिले हुए होंठों में से घुसेड़ते हैं खाना
पैदा होने के समय की-सी नंगी देह को
रस्सी से बाँध कर घर् घर् घसीटा
अगिया मसान-से
अँधेरे में
हाथ में चाँदी की तलवारें ले
घेरे बाँध नाचते हैं

बीहड़, जंगल, पहाड़, पठार सब पार कर
घसीट ले गए मुझे एक खुली जगह
जिस के आसपास थे भाँति-भाँति के बाग़

सिर नीचा किए हुए कुछ, कुछ झुके हुए
कुछ हँसते हुए, कुछ कूदते हुए बाग़

वे गए तलवारों के बाग़
ले आए सोने की तलवारें
वे गए छुरियों के बाग़
ले आए चाँदी की छुरियाँ
मिट्टी के तेल के कुओं में उगती हैं बंदूकें
धतूरे के पौधो पर गोला-बारूद, हथगोले

उन लोगो ने मूँड़ दिया मेरा सिर
एक सुनहरी तलवार मे
ख़ून चूते हुए मेरे माथे पर
मंत्र पढ़ कर लगा दिया तीन लकीरों का वैष्णव चिह्न

मानो लटका देगे
उन्होने एक सफ़ेद रस्सी ले
जनेऊ की तरह मेरे धड़ से बाँध दी
चित लिटा कर
सोने की तलवार से
साफ़ कर दिए मेरी छाती के बाल
और चाँदी की कटारी से
कर दिया एक छेद
रक्त बुद् बुद् वह निकलने पर
दौड़े-दौड़े गए उठा लाए एक पौधा
और रोप दिया
जहाँ से बह रहा था रक्त का फ़व्वारा
वह पौधा
मेरे सारे शरीर मे जड़े फैला कर लहलहाता है
निकलने लगीं डालियाँ और टहनियाँ

जब देने लगा फल-फूल
निकल गई मेरी साँस

एक दिन मै यूँ ही घूम रहा था
बिना आँखो के बिना टाँगों के
बिना शरीर और बिना साँस के
उसी खेत उसी पेड़ के नीचे
(देखता हूँ)
लोगो का एक बड़ा झुंड
बीच में खड़ा किया गया है एक मंच
वहाँ बैठे हैं बड़े-बड़े लोग मुस्कुराते हुए
उन के आसपास उकड़ूँ बैठे
हाड़-मांस के पुतले लँगोटों में
कुछ गाते और नाचते हैं

किए इन्होंने बड़े-बड़े काम
किए इन्होंने बड़े-बड़े त्याग
ले कर आओ उन्हें मंच पर
सोने की इन की कार पहनाओ चंदन का हार
इन के बँगले बड़े-बड़े
सीटें इन की साफ़ करो
इन की जेबे बड़ी गहरी
भक्ति भजन में मस्त रहो
इन की बेटी बड़ी हुई
ससुर देवता इन्हे कहो
इन की देहें मोटी है
उठा इन्हे तुम नाचो जी
मंच पर बैठे हुए हमारे पूजनीयों के चरणों में नमन
उन की घरवालियों के चरणों में नमन
उन की संतानो के चरणों में नमन
उन के पूर्वजो के चरणो मे नमन

उन के पूर्वजों के पूर्वजों के चरणों में नमन
इस तरह नाचते रहे
ऊपर वाले इन्हें देख
आनंदित हो सिर हिला रहे हैं
इन की भय-भक्ति हृदय से पसंद कर रहे हैं

'क्या हंगामा है?' कहता हुआ मैं मंच की तरफ़ गया
वहाँ बड़े-बड़े लोगो के पीछे
कुछ लोग बैठे थे
उन्हे देखते ही मैं भय से पीला पड़ गया
वहीं उन बड़े लोगों के पीछे–

वहीं बैठे है, वे वहीं बैठे हैं
बिछा ली है नीम की पत्तियाँ
ढँक लिया है अपने को नीम की पत्तियों से
पुरानी चप्पलें जला कर
छापा लगा रहे है लोगों की देहों पर
उठवाते है भारी पत्थर
इमली के पेड़ से बाँध देते हैं
वहीं बैठे है वे वहीं बैठे है
नीबू रखे हुए हैं वे
प्रसव में मरी हुई औरत की रखी हुई है बाँह *
थैले मे रखे हुए है तरह तरह की हड्डियाँ
मूँछों ही मूँछो हँसते है
बड़े-बड़े लोगों के पीछे
वहीं बैठे हैं वे वहीं बैठे है

* भूत-प्रेत की बाधा दूर करने के उपचार

गुलाम मोहम्मद शेख

गुजराती से अनुवाद : कवि के साथ वर्षा दास एवं [illegible]



भीगी वनस्पति के पेट में सोये बासी पवन पर
कल जिस उल्लू का बसेरा था
उस के पंख का नीला साया अभी वहीं पड़ा है।
आज अचानक ही वह मुझे मिल गया
उस का रंग गाढ़ा है
पर भीतर थोड़ा लाल भी सुलगता दीख रहा है।
उस की गंध
उस की खटास है ऐसी
जैसे नींबू के पत्तों को टेसू के पानी में
भिगोया हो।
उस का चेहरा मनुष्य जैसा और पीठ पशु जैसी है।
पीठ दीखती नही
पर वह पीले पड़ते जामनी रंग की होगी।
साये के छिद्रो मे
मै उल्लू के पंखों की जड़ ढूँढने के लिए
अँगुलियाँ घुमाता हूँ
इतने में वह हिल उठता है,
और मेरी अँगुली को डँस कर
साँपिन की तरह चित लेट जाता है
मेरी आँखों में अँधेरा
उस की पीठ का रंग, मेरी पलकों से टकरा कर
वनस्पति के पेट में ढुलक जाता है।

(अप्रैल 1961)

कब्रिस्तान में

मनुष्य टूटे और धूल हुई उस के पेट से हरी नागफनी और पीले
थूअर के

हज़ार-हज़ार राक्षस निकले। सहजन का मांस खा कर
ठंडे पवन भाग निकले। गिद्ध की टेढ़ी गर्दन जैसे, सड़े हुए नीम के
खोखल में चींटियों ने कत्थई घर बसाए।
पत्थर खोखले हो गए और उन पर
कुरेदे नाम भी अब तो आकाश की छाती जैसे चपटे हो गए।
नई-नई पड़ी लाल मिट्टी में पानी दो-चार दिन टिका, तीसरे दिन तो
भूखे-प्यासे इतने बादल उमड़े कि सारा पानी पी गए।
अंधी पुतलियों जैसे बाड़ के किनारे
गूँगे, उदास और मुर्दार खड़े रहे।
सब से आख़िर में पश्चिमी कोने के छेद में घुस रहे
कबरबिज्जू के पैरों में घुस कर शांति सारी क़ब्रों पर सो गई।
ठीक अभी फाटक के बीच की दरारों और
नकुचों में भी उस ने डेरा डाल लिया है।
ऊपर, नीचे, आजू-बाजू हवा के सुस्ताते अंगों को भींचती,
नाले में बसे
बौराए कुत्ते की आँखों की तरह भौंकती, यह शांति कीचड़ की तरह
चारों ओर छा गई है। कुछ सुझाई नहीं देता।
बस कीचड़, कीचड़, कीचड़।

(जनवरी 1962)



तुम ज़्यादा से ज़्यादा
पत्थर की कनी हो,
सूखी नदी के किनारे खुजलाते बगुले के पंख का कीड़ा हो
अँधेरी रात में ओलती से टपकते पानी की बूँद हो,
या हाँफती हवा के अंग-अंग मे फैल उसे शिथिल करती
वाष्प का विस्तार हो।
किन्तु मोहासक्त मयूर की आँख का काम तो कदापि नहीं।
शिकारी जिसे खा कर पसरे हुए हैं उस मादा को

चरागाह में ढूँढता सारस भी नहीं।
थकी हुई नायिका की चोली का पसीना भी नहीं।
अपमृत प्रेमी की क़ब्र का फूल भी नहीं।
अगर तुम कभी कुछ हो भी
तो कदाचित् क़ब्रिस्तान की दीवार पर चढ़ी बेशर्म काई
जो नमी खा बढ़े
और धूप में खिर पड़े
तब मैं क़ब्र के मोगरे से छिटके साँप की
केंचुल का एकाध टुकड़ा रहा हूँगा, जो
उस काई को छू कर ज़मीन पर खिर पड़ा होगा।

(नवंबर 1960)

एक घरेलू दृश्य

घर आ कर मैं ने पहला काम
क़मीज़ उतारने का किया।
सारा दिन उस ने मेरे धड़ की भद्दी नक़ल की थी,
यह ख़याल आते ही मैं ने उसे भन्ना कर फेंका
वह एक कोने में सिकुड़ी उकड़ूँ पड़ी रही
उस की सलवटों में
मेरी नाक,
मेरा कपाल,
मेरी आँखों के नीचे के गड्ढे,
मेरे विचके हुए ओंठ
और मेरे बाल भी
थोड़े-बहुत दिखाई दिए।
मैं ने घबरा कर गर्दन पर हाथ रखा
गर्दन ढूँढ लूँ उस से पहले ही
मेरे हाथ आँखों की तरह खुल कर
टकटकी लगा कर देखने लगे

अँगुलियाँ ओंठों की तरह पिचक
सिसकारी भर उठीं।

(1961)

स्टिल लाइफ़

पिचके हुए तकिए में चौड़े माथे का गड्ढा,
बिस्तर के बीचोबीच पोलापन,
पलंग के मोटे पायों पर हाथी के झुर्रीदार कान जैसी
चादर झूल रही,
पूर्व का सूर्य आधी नींद में कमरे में आता
और चौतरफ़ा ठोकरें खाता है।
आईने पर अधपोंछी धूल,
काले क़ालीन पर पड़े गुलाबी ब्रेसियर के रेशमी पर्वतों पर
भूली भटकी चींटी चढ़ रही है।
कत्थई टेबिल पर तहाई हुई जामनी साड़ी की
चौड़ी, कलफ़दार, हरी किनारी
काले मख़मल की जूती पर पलकों के बाल जैसी बारीक
सुनहरी कढ़ाई।
ईर्ष्यालु प्रेमी की तरह सूरज निरा अंधा
टेबिल पर रखे ग्लास फोड़ता है, पर्दे फाड़ता है
गुलदान के भीतर से नक़ली दाँत जैसे फूल
बाथरूम की टाइल के सामने किटकिटाते है।

(1961)

ओर्फियस

विना कुत्तों की इस बस्ती में भौंकते हैं काले अक्षर,
कोई, शायद कोई, पहचानता है मेरे पैरों के निशान।
पहचानता है मुझे इन जंगलों मे।

तुम बरसों से पड़े हो मेरे पीछे
बरसों मेरा पीछा किया है तुम ने
तुम ने क्या पहचाना?
मेरी गंध? मेरे लहू में तो नहीं है मिट्टी की ज़रा भी बास।
किस संकेत पर दौड़े आए इस ओर?
मेरे पदचिह्न तो पड़े हैं हज़ारों पदचिह्नों मे,
उन पर फिरे हैं हज़ारों वाहनों के पहिए,
तुम्हे कौन-सी पहचान मिली, कौन-सी निशानी?
अपनी परछाई को मै हमेशा कपड़ो के साथ पहन लेता हूँ
आसपास फैली हवा को
काट देता हूँ हँसिए जैसी साँस से

तुम से मैं कहाँ मिला?
तारों से मेरी दोस्ती नहीं
सूरज को हमेशा दी हैं गालियाँ
चाँद को खाने को हमेशा मुँह बाया।
मैं किसी का हो कर नहीं रहा।
मै किसी के सग-साथ चला नही—
बोला नहीं— ख़ुद अपने से भी नही।
फिर तुम से किस ने की खुसुर-पुसुर?

अँधेरे कमरे में रूठ कर बैठे आँसुओ मे
मैं ने पहली बार तुम्हें पहचाना
बेर का काँटा निकाल अँगुली पर उभर आई लहू की बूँद को
देखने मे मै मशगूल था तब तुम ने इसे पीने को कहा था,

आधी रात को
घर के पिछवाड़े, बूचड़खाने में
क्या तुम्हीं ने बकरों को जगाया था?
और भोर में नीम पर चढ़ कर तुम्हीं ऊँघ रहे थे क्या?
पहली बारिश में केंचुआ बन कर तुम्हीं निकले थे क्या?
निर्जन पहाड़ी पर आँवल के फूल में तितली बन तुम्हीं छिपे थे क्या?
क्या तुम्हीं ने जगाई थी जिज्ञासा
पत्तों के रेशे-रेशे उधेड़ कुछ खोजने की?
और मोरपंख के एक-एक तंतु को अलगाने की?
कीचड़ में जमा पानी में
अनजानी भाषा में अनजाना लिखने की?
शायद तुम्हीं ने मुझ से रुपहली रात में
अकेले भटकने को कहा था
और क्या तुम्हीं ने कहा था मुझ से बाट जोहने को?
मैं किसे ढूँढ रहा था भीड़ में?
तुम्हीं ने कहा था न, कूदने को रूपमती सरोवर मे?
ऊँची पहाड़ियों से निचली पगडंडियों पर छलाँग लगाने का
उत्साह तुम्हीं ने जगाया था न?
मैं समुद्र के सामने खड़ा था
तब क्या तुम्ही सरो के जंगल में गा रहे थे?
बदामी में ढलती शाम के समय क्या तुम्हीं मुझे
बैलगाड़ी की ढिचर-ढिचर से कदमताल मिलाते मिले थे?
पर तुम इतनी दूर तक मेरे पीछे चले आओगे
और *तुम्हीं* आओगे
यह विश्वास नहीं था
और फिर भी तुम आए।
मगर तुम हर-हमेशा मेरे पीछे क्यों खड़े रहते हो?
अपना चेहरा तो दिखाओ!

(अक्तूबर 1963)

चेहरा

कई बार शब्द हाथ में पकड़े पटाखों की तरह
फूट पड़ते हैं,
फूँक मारो तो बुझते नहीं।
अख़बार की चींटी-धार पर
युद्ध पाँत में डटे सैनिकों की तरह
शब्द फूटते हैं।
क़िस्मत को मुट्ठी में भींच कर भागते मनुष्य का
चेहरा उस में नहीं दीखता।
मेरे पास कुचली हुई जीभ मे सना
एक शब्द है,
उसी के सहारे मैं किसी बचे हुए चेहरे को
खोजने निकला हूँ,
विश्वरूप अख़बार का कोना-कोना छान लेता हूँ
पर चेहरा नहीं मिलता।
तड़पते शब्द को फिर से निगल लेता हूँ।
थके पंछी जैसा शब्द
पेट में अभी-अभी पड़े अन्न के पर्वत पर
थक कर बैठ जाता है,
अख़बार उस पर छत्र बन छा जाता है।
अन्न के नीचे उतरने के क्षणों में
अख़बार में गोलीबारी से लड़खड़ा कर शरीर निढाल हो जाता है।
अन्न पैठा
अंतरिक्ष में पैठा यात्री
अन्न की अग्नि, जठराग्नि बुझाती
मोजांबिक में भूख से तड़पते बच्चे को मार देता है सैनिक,
अन्न अँतड़ियो मे आँख-मिचौली खेलता
अणुबम के प्रयोग, प्रशांत मे बुदबुदा,
अन्न रक्त के दरवाज़े पर
बुझते हैं मुक्ति के युद्ध

शुरू हो जाते हैं अत्याचार,
क्रुद्ध पति, पत्नी की योनि पर
करता है बिजली के तार का आघात,
कहीं काठियावाड़ में मिट्टी का तेल छिड़क कर
नववधू करती है आत्मदाह,
हब्शी के कंधे की जूती पहन
गोरा बैठता है बग्घी में,
कहीं तानाशाही, कहीं भ्रष्टाचार
कहीं टेलीविज़न पर युद्ध-शांति पर सेमिनार।
अन्न अब अंग-प्रत्यंग में
अब अन्न और देह में अद्वैत।
घबराया शब्द घर की तरफ़ दौड़ता है,
तंद्रा की चट्टान पर हाँफता बैठ जाता है ...
बचपन नामक 'बोनसाई', आँधी जैसी स्मृतियाँ,
अंधकार के आकार का घर।
व्याकुल,
मैं खींच लेता हूँ पेट के मूल से अख़बार,
शब्द के अ-क्षर प्राण झकझोरता हूँ :
चल, चेताएँ बची हुई बारूद
चल,
अंधे अख़बार को सुलगा
जला लें लपटों से घिरा चेहरा,
चल।

स्वप्न में पिता

बापू, कल तुम फिर से दिखे
घर से हज़ारों योजन दूर यहाँ बाल्टिक के किनारे
मैं लेटा हूँ यहाँ,

खाट के पास आ कर खड़े आप इस अनजान भूमि पर
भाइयों में जब सुलह करवाई
तब पहना था वही थिगलीदार, मुसा हुआ कोट,
दादा गए तब भी शायद आप इसी तरह खड़े होंगे
अकेले दादा का झुर्रीदार हाथ पकड़।
आप काठियावाड़ छोड़ कर कब से यहाँ क्राइमिया के
शरणार्थियों के बीच आ बसे?
भोगावो छोड़, भादर लाँघ
रोमन क़िले की कगार चढ़
डाकिए का थैला कंधे पर लटकाए आप यहाँ तक चले आए--
पीछे तो देखो दौड़ आया है क़ब्रिस्तान!
(हर क़ब्रिस्तान में मुझे आप की ही क़ब्र क्यों दिखाई पड़ती है?)
और ये पीछे-पीछे दौड़े आ रहे है भाई
(क्या झगड़ा अभी निपटा नहीं?)
पीछे लकड़ी के सहारे
खड़े क्षितिज के चरागाह में
मोतियाबिन्द के बीच मेरी खाट ढूँढती माँ।
माँ, मुझे भी नहीं दिखता
अब तक हाथ में था
वह बचपन यहीं कहीं
खाट के नीचे टूट बिखर गया है।

(दिसबर 1975, विल्नियस, लिथुआनिया)

'स्वप्न में पिता' कविता के अलावा सभी कविताएँ कविता-संग्रह अथवा में प्रकाशित हैं।

हीरेन भट्टाचार्य

मिया से अनुवाद : कवि के साथ पापोरी गोस्वामी एवं अरुण कमल

अप्रतिद्वंद्वी

मृत्यु से कौन लड़ता है, जीवन का संगीत मृत्यु की सूक्ष्मता में शुद्ध
स्वर जिस की ध्वनि की प्रकृत उद्धृति है, मेरी पीठ पर हाथ रख
एक विशाल पुरुष — कविता पुरुष;
मैं उस की छाया के साथ स्मृति के गुच्छे बटोर कर चल रहा हूँ,
मुक्त सपनों के सामने रोशनी की घेराघेरी
मै नहीं जानता कविता क्या है
मेरी भयावह यात्रा के साथी और कौन हैं,
या फिर अपनी सीमाबद्धता,
मै शरीर तोड़ कर निकल आता हूँ या फिर ज़िन्दा ही
पूरा का पूरा ज़मीन के नीचे धँस जाता हूँ, ज़मीन के नीचे
मेरी संपूर्ण देह, मिट्टी मेरी देह के पास, आकाश-पाताल;
मेरे चारों तरफ़ मिट्टी, मिट्टी मेरी लालची जीभ में

बोध का अक्षर

मुझे भी अपना प्रेमी बना लो
कातर देह में खेले बसंत-हवा
'प्रिय' शब्द आ कर टकराने दो हृदय से
मुक्त हों वर्णबोध के बंदी अक्षर'.
उन के शरीर मे
झिलमिलाए उत्सव की पोशाक
आओ, तुम्हारा गान सुनें, प्रेम का निर्जन गान।

मेरा और मेरी पृथ्वी का (लंबी कविता के कुछ अंश)

वैसा ही हूँ, दुख मेरी गोद का बच्चा, बार बार
दोनों हाथ से उठाता, जीभ पर दुखियारे घर का नमक,
कुँ मे निकलता है माड़।

ग़ुस्सा मुझे जल्दी नहीं आता।
ज़िम्मेदार बाप की तरह जानता हूँ
कैसे ग़ुस्से को समेट कर रखा जाता है
और किसे कहते है क्षमा। बहुत ज़िम्मेदारी है मुझ पर।
दुखों को पाल-पोस कर आदमी बनाने की भारी ज़िम्मेदारी,
एकांत में, जर्जर बीमार तन,
कुछ कहने लगता हूँ तो कंठ से फूट पड़ता है अजाना ख़ून
मुँह के भीतर-बाहर।

पृथ्वी मेरी कविता

मेरी क़लम लोहार के हाथ का हथौड़ा, ठोंक-पीट कर बनाता हूँ शब्द
किसान के फाल जैसा पैना; हलरेखा में सोने की सीता,
बढ़ई की आरी-सा क्रूर;
सख़्त लकड़ी के रेशे चीर कर लाता हूँ खींच
अनुभव के ख़ून से रँगे हुए शब्द, चाउँताल मर्द के धनुपबाण-सा
लक्ष्यभेदी एक-एक शब्द मेरे रक्त-मांस की इच्छा में तीव्र हो उठता,
उन में से कोई पर्वत-सा उद्धत, कोई नदी-सा नत,
कोई झील-सा गंभीर
किसी के कहने पर उठता-बैठता नहीं।
नद-नदी, पर्वत-चित्रित विपुल महादेश का मैं कवि।
पृथ्वी मेरी कविता।

कविता

जोत कोड़ डालो इस परती आदमी-ज़मीन को
लोहे के तेज़ फाल से तोड़-तोड़ डालो
नंगी धूप से तप्त खेत
देह-दरिया कीचड़-मिट्टी गूँध कर छींट दो धान।
सूखी मिट्टी में पटाओ धारसार पानी

लबालब पानी से भर जाए
चैत की दरकी ज़मीन
पानी लाओ, तोड़ो नदी-नाले गढ़े-ताल।
मिट्टी को धूल बना विजड़ा रोपो
बड़ी ज़िद्दी है धान वाली ज़मीन
किस टोपरे में क्या रोपोगे
आहू-शालि या बाडआमना – सब में छीना-झपटी
मचलते हैं सब
जोत कोड़ डालो आदमी-ज़मीन
ख़ून पसीने का खेत।

देश और अन्य विषय

1. देश के नाम पर आदेश नहीं चाहिए
मेरे लथपथ ख़ून में दौड़ते है
हज़ारों-हज़ार बाँकुरे घोड़े!

2. मेरे शब्दों की शोभायात्रा हो, मेरे शब्द क्रूर-कुटिल रात के प्रहरी हों,
कौंधती रहने दो विद्रोह की पैनी तलवारें
बेचैन शब्दो के उल्लसित रक्त-प्रवाह में

3. मेरी क़मीज़ में झलक उठती है कातरता
मंद पड़ गई है मेरी गहरी साँसें
भीतर बहुत बेचैनी, बहुत अस्थिरता।
सतर्क प्रहरी हवा जैसे उत्सुक हो कर पानी में नचाती है मछलियाँ
मेरे चारों तरफ़ उद्यत मृत्यु; मृत्यु के दक्ष हाथ या फिर,
मृत्युंजय प्रतिभा का आच्छादित आभास।

मेरा यह शब्दसमूह (तरुण कवियों के हाथ में)

स्वप्न-वाटिका छू कर आते हुए मेरे इन शब्दों में जीवन-धारा की सुषमा,
समय का अंतरंग उत्ताप, मेरा कोई अपना आविष्कार नहीं है,
मेरे भीतर जैसे एक किसान, मैं शब्दों को चख कर देखता हूँ,
किस का क्या स्वाद, हथेली में ले कर महसूस करता हूँ
कितना ताप है उन में,
मैं जानता हूँ, शब्द मनुष्य की महान सृष्टि की तेजोमय संतान हैं,
मै एक साधारण कवि,
कंधा बदल-बदल ढो कर लाए मेरे इन शब्दों में
मनुष्य का करुण अनुभव और इतिहास की निष्ठुर खरोच।

कविता के लिए : एकांत प्रार्थना

कठोरता से ठोकर खा कर लौट आती है कवि की आवाज़,
प्रतिद्वंद्वीविहीन प्रतिध्वनि।
क़लम के सामने काँपती है प्रतिश्रुत कविता, कवि का अस्तित्व।
स्नायुभार से पीड़ित अंतहीन कवि का नातिउच्च स्वर में शोक का श्लोक,
शिल्प की स्वाधीनता ...
मुझे यह कविता ख़त्म करने दो इच्छानुसार,
रक्त की वाणी विवस्त्र देह के अनचाहेपन में छटपटा कर मरती है,
हाथ में भविष्य की अद्‌भुत पताका।
मुझे अभय-दान दो परिचित शब्दों की जड़ता तोड़ हथौड़े से
चूर-चूर करने की, या फिर रक्तहीनता से मृतप्राय निष्फल यथार्थ को
टुकड़े-टुकड़े करती दुर्धर्ष तलवार की विलक्षण तेजस्विता।

सपनों के दाएँ बाएँ

अनाज के बीज सँभाल कर रखे है मै ने।
जाड़ा बीत जाए, चैत की धूप जला दे कीटाणु

मुक्त करे दूषित मिट्टी,
नया पानी आने दो, फिर अनाज का बीज छींट दूँगा
मन-मिट्टी मेरी रोमांचित युवा

पलकों में बह आई हैं दो नदियाँ
मटमैले पानी के टलमल सोते के दाएँ-बाएँ गसे हुए धान
जीवन-जटिल-ग्रंथि में मेरा भरापूरा
पसीना भरा तरोताज़ा सपना।

धूप में झिलमिलाना

(मै अब भी गीत सुन कर रुक जाता हूँ।)
कविता शुरू करना कठिन है
सीधी तरह कुछ भी नहीं आता आसानी से मेरी क़लम में
सुर पहले पकड़ लेता है मुझे .

क्या सुर कान लगा कर सुनने वाला गीत है?
बहुत सावधानी से चलता हूँ, कहीं क़दमों की आहट से
मिट न जाएँ सुरों में छिपे हुए गीत की
दो-चार पंक्तियाँ।
कोमल होंठ की एक झलक संतरा-धूप।

अनाज ही सत्य है तुम अनाज की मिसाल हो

मौसम बहुत सूखा है
हवा में धधक उठा मेरी साँस के नीचे का गुप्त बारूदख़ाना
एक क़लम स्याही की सूखी कविता

अन्नपूर्णा मेरी, अनाज ही सत्य है
और कोई गीत या कविता नहीं है मेरे पास

तुम्हारा हरा आँचल पकड़ कर राख बने मेरे गीतों के पार
उठ रहा है बादलों का हिलोर।

सावन पूछ रहा है, गीत गाऊँ क्या?

ज़िद्दी भैंस की तरह काला आकाश
तुम्हारे वखान में अस्थिर है मेरी क़लम।

अनाज की सुदृश्य वर्णमाला

जोत कोड़ कर मुझ में छींट दो अनाज के बीज
आँसू से पटाऊँगा पथरीली ज़मीन
हाड़-मांस की खाद पर फल-फूल उठेंगे धान, उड़द, सरसों –
अनाज की सुदृश्य वर्णमाला।

तिल कुश तुलसी से शुद्ध कर लो मुझे
विह्वल मुख में दो सृजन-प्रकृति की भाषा
धान-बाढ़ से सुदृढ़ हो आवेग-अस्तित्व का निर्जन निर्माण

मेरे हृदय के नीचे हवा-धूप की अदृश्य जड़।

बीज

कहीं भी गद्य का उजाला नहीं है
बहुत फीकी पड़ गई है मेरी कविता।
सीना खोद कर निकाल लाओ ख़ून पसीना और प्रेम
मेरा वह ताज़गी-भरा खनिज।

अपने स्पर्श से जला दो मेरी हड्डियों का समिध
दो आँखो की धाराओं तक काट लाओ नदी की पागल धारा
ख़ून से भी अधिक दीप्त।

बोध-शक्ति की सूखी कोशिकाओं में आने दो बाढ़ की उर्वरता
खाद मिले रक्तवर्ण कमल के बीज को।

क्या तुम सुखी हो

मेरे सीने में था गुलाब-बग़ीचा
एक दिन ख़ून से लथपथ एक गुलाब ने
सूखे काँटे से चुपके से पूछा–
क्या तुम सुखी हो
सुखी हो तुम?

गुलाब-पौधे से कुछ दूर अँधेरे में
मैं कान लगा रहने लगा
जाड़ा-गरमी में झड़ती है फूल की पंखुरियाँ।

अरुण कोलटकर

मराठी से अनुवाद : कवि के साथ चंद्रकांत पाटील एवं विष्णु खरे

सन १९२१ ईसवी में बम्बई के तत्कालीन पुलिस कमिश्नर पैट्रिक केली उर्फ 'केळी' साहब के क्रॉफर्ड मार्किट के सामने वाले दफ़्तर में गोविन्दबुवा द्वारा पेश किए हुए एक प्रयोगमूलक भजन का पूर्वग्रहग्रस्त वृत्तांत

वाह गोविन्दबुवा तुम ने किया क्या कमाल
भजन को दी तुम ने बैंड बाजे की चाल
'रूप पाहता' पद का ख़ूब किया बदहाल
परसों पुलिस कमिश्नर के दफ़्तर में होना
यह जो विट्ठल सलोना यह जो माधव सलोना

फेंक रहा था गोविन्दबुवा विलायती तान
विट्ठल मुंढे का अचानक लचका गिरेबान
इतनी तेज़ी से मगर क्यों होना हलाकान
फ़िज़ूल ही चल रहा है वाहवा वाहवा कहना
यह जो विट्ठल सलोना यह जो माधव सलोना

केली साहब के सामने हुआ नाटक सटीक
पेटी बजा रहा था आत्माराम खटीक
अरे उसे करना था गिरफ़्तार उसी वक़्त ठीक
कम से कम उस बेचारी पेटी को तो छुड़ाना
यह जो विट्ठल सलोना यह जो माधव सलोना

अरे क्या बजाता है आत्माराम, पत्थर
पड़ गई है पाँवपेटी खटीक के हत्थे
च्याँ च्याँ करते एकसाथ सारे सुर सत्ते
अब भी सोचो अरे उस को फाँसी ही देना
यह जो विट्ठल सलोना यह जो माधव सलोना

वाह भाई गोविन्दबुवा यह कौन-सा राग
सुर के नीचे ऊपर आगे पीछे भाग

सभी सुर निषिद्ध जिस में उस गाने को लगे आग
ताल है रबड़ का और राग है अनहोना
यह जो विट्ठल सलोना यह जो माधव सलोना

बंद करो गाना तुम्हें देता हूँ स्वराज
पंचम को सुनते ही कहने लगा पंचम जार्ज
मेरी दाढ़ी में हो रही है ज़बर्दस्त खाज
कोई तो दो उस की दाढ़ी को खुजौना
यह जो विट्ठल सलोना यह जो माधव सलोना

साहब ने थपथपाई अपने हाथों से पीठ
कहा, कल आओ, करो मेरे बाबू से भेंट
देता हूँ तुम्हें एक उम्दा सर्टिफ़िकेट
गोविन्दबुवा को नहीं अब किसी का डरौना
यह जो विट्ठल सलोना यह जो माधव सलोना

मुट्ठी में साहब का पोंगलीदार काग़ज़
जिस को तिस को दिखलाता घुँघराले दस्तख़त
हैरान हो गए लोग मांडवी से वरली तक
भले भले भले बलवंतबुवा का है कहना
यह जो विट्ठल सलोना यह जो माधव सलोना

घूस

हवलदार जैसे दिखा कि उसी के साथ
अपने आप जेब के भीतर जाता है हाथ

आजकल कहो कौन लेता नहीं पैसा
कहते हैं यमराज पर वह भी है वैसा

क्या फ़ालतू में पलंग के नीचे छिपता
अरे यम को करो चुकता सिर्फ़ उस का हफ़्ता

योगासन, तीरथ, या दूसरे व्यायाम
कुछ नहीं, यम को दो रिश्वती हरिनाम

पैदा होने के सिवा तुम ने क्या किया अपराध
कहो उस से, ऐसा नहीं होगा अब इस के बाद

इस बार छोड़ दो फिर नहीं लूँगा जनम
मर जाने पर क्या आदमी की इज़्ज़त-शरम

लोग कहेंगे, स्साला, मेरी होगी छी: थू
मरना ही था तो पैदा हुआ ही क्यों तू

अकारण बार बार हमें लेना है जनम
बदलनी ही चाहिए इस क़ायदे की क़लम

झोक धूल, दे झूल, हो सटक सनंदन
क्या ज़रूरत, दबा हाथ, मोड़ के दे रघुनंदन

यमराज को कुछ नहीं बस दो रिश्वती हरिनाम
जाएगी वह बीमारी ठोक कर सलाम

कहे बलवंतबुवा बार बार क्यों वही
इस से भला है मैं मरता ही नहीं

ना गई

ऊब गया मन रोज़ रोज़ धंदा कर
सोचा जाऊँगी इस साल पंढरपुर

जाना है जाना है कहता था मन
मिट गई हवस जो देखा टेसन

कैसा बड़ा बनाया है टेसन
बैठ गई दिल की धड़कन

इधर से ही भगवान मैं जाती हूँ लौट
जाने दे रे मेरा टिकट गया फोकट

मुझे तेरी आस मेरे पंढरीनाथ
लेकिन यह यात्रा नहीं मेरे बस की बात

हो सके तो तू ही आ कभी किसी बार
तेरी राह देखूँगी मैं अपने ही घर

फ़ोटो

फोटोग्राफर भाई फोटोग्राफर भाई
मेरा फोटो खींच लो साथ विट्ठल-रखमाई

अरी रखमाई, जरा खिसक ना उधर
तुम दोनों के बीच मेरे लिए जगह कर

इस ओर विट्ठल उस ओर रखमाई
मैं खड़ी रहूँगी दोनों के बीच री बाई

ऐसा कैसा है रे तू प्लाइवुड से बना
शान के साथ हाथ मेरे कंधे पर रखना

क्यों री रखमाई तुझे ग़ुस्सा क्यों आय
बंबई जाने से पहले दूँगी तेरा विट्ठल लौटाय

फोटोग्राफरजी फ़ोटो में कूँची से भरो रंग
मेरी साड़ी-चोली नीली, नीले विट्ठल के अंग

आधे घंटे मे आती हूँ मैं देख कर मेला
कंबल को खरीदो और दो चक्कर झूला

और मौत का कुआँ मुझे नहीं है भूलना
तब तक मेरा फोटो तैयार रक्खोगे ना

वामांगी

मंदिर में गया था इस बीच
दिखा नहीं वहाँ विट्ठल
रखमाई के बग़ल में
सिर्फ़ एक ईंट

मैं ने कहा, चलो
रखमाई तो रखमाई
किसी के तो पाँव पर
रखना है सिर

पाँव पर रखा हुआ
सिर हटा लिया
अपने को ही बाद में कभी
काम आएगा इस-लिए

और जाते-जाते यूँ ही
रखमाई से कहा
विट्ठू कहाँ गया
नज़र नहीं आता

रखमाई ने कहा
कहाँ गया यानी
खड़ा नहीं है क्या मेरे
दाहिने ओर

मैं ने फिर से देखा
खातिरी के लिए
और कहा, वहाँ तो
कोई भी नहीं

कहने लगी सामने
देखते-देखते ज़िन्दगी निकल गई
बाजू का मुझे थोड़ा
कम ही दिखता है

पत्थर-सी हो गई
अकड़ गई गरदन
ज़रा भी नहीं हिलती
इधर या उधर

कब आता है कब जाता है
कहाँ जाता है क्या करता है
मुझे कुछ ज़रा भी
पता नहीं

कंधे से कंधा
सदा बग़ल में है विट्ठू
सोच कर बावली मैं
खड़ी हूँ

असाढ़-कातिक ग्यारस पर
इतने लोग आते हैं सदा
पर मुझे कभी किसी ने
बताया ही नहीं

आज अचानक मुझ पर
हहरा कर आया

अट्ठाईस युगों का
एकाकीपन

जुहार

जुहार माई-बाप जुहार
तुम्हारे महार का मैं महार

यह वर्णाश्रम का गदहा
रास्ते मे मर कर गिरा है औंधा

अब आगे जाए कैसे बढ़ा
रास्ते मे है यह मरा पड़ा

इस की मत करो पूजा अकारण
इस में अब पड़ने लगी है सड़न

बारह गाँवों की धूल पीठ पर
बड़ा उत्पाती है यह खर

अरे, मर कर पड़ा हुआ है
फिर भी दुलत्ती झाड़ रहा है

घसीट कर ले जाऊँगा लाश
मेरा काम बस हुआ खलास

क्या काम चमड़ी का इस की
देना दो तीली माचिस की

ढूँढो सब नाली-नाला
किधर गया वह ताशेवाला

मिट्टी का तेल डालो आप
मैं लगा दूँ झट से आग

ज्यों ही मै सुलगाऊँ गधा
ज़ोरदार तू ताशा बजा

चक्की

शरीर में चलते हैं चक्के
घूमते है पट्टे साँस के
सम्हालो अपने-अपने साफ़े
गाँव वालो

बाई, तू कोई भी हो
पंडिताइन, देहातिन, ईसाइन
यहाँ नही है भेद-भाव
खोंस ले पल्लू

और घर जा चुपचाप
तू हो बूढ़ी या जवान
वह भी यह चक्की
पूछेगी नहीं

तू दगडू, घोण्डू या पांडू
स्त्री, पुरुप या हिजड़ा
काला, गोरा, मोटा या पतला
कैसा ही क्यो न हो

पर दादा, मेहरबानी कर
भूल जा अब तेरी जुवार
जब तक ज़िन्दा है
तेज़ी से भाग

चक्कीवाले सन्त
ज़रा पीछे हटो
नहीं तो पिस जाएँगे
आप के भी हाड़

यह चक्की अब हुई पागल
जो हाथ इसे देगा भीख
उस को खा कर ही मिटेगी
अब इस की भूख

भक्भक् भक्भक् भक्भक्
इस ने पीसी जगदंबा
तीखी मीठी या खट्टी
सोचे बिना

बाराखड़ी

अ अनानास का आ आई का आई माने माँ
इ इजार का इजार माने पैजामा
ई ईडलिम्बू का ईडलिम्बू माने चकोतरा
उ उखळ का उखळ माने ओखली
ऊ ऊख का ऊख माने ईख
ए एडके का एडका माने मेढा
सब अपने-अपने चौकोर सँभाले बैठे हुए हैं

ऐ ऐरण का ऐरण माने निहन्नी ओ ओणवा का ओणवा माने उकड़ूँ
औ औषधि का अं अंबा का अंबा माने आम
क कप का ख खटारा का ग गणेश का घ घर का
सब की अपनी-अपनी मालिकी की जगह है

च चम्मच का छ छतरी का ज जहाज़ का झ झबले का

ट टरबूज का ठ ठप्पे का ड डब्बे का ठ ठग का ठग माने बादल
ण बाण का
सब अपनी-अपनी जगह अड्डा सँभाले हुए हैं

त तलवार का थ थडगं का थडगं माने कबर
द दवात का ध धनुष का न नल का
प पतंग का फ फणस का फणस माने कटहल
ब बतख़ का भ भटजी का भटजी माने पंडितजी म मदई का
इन में एक-दूसरे से उपद्रव की आशंका नहीं है

य यज्ञ का र रथ का ल लहसुन का व वजन का श शुतुरमुर्ग़ का
ष षटकोण का स सा माने खरगोश
ह हिरन का ळ ळ का ळ माने बालक क्ष क्षत्रिय का
इन सभी को अचल पद मिल गया है

माँ बच्चे को ओखली में डालेगी नहीं
पंडितजी बतख़ को लहसुन से बघारेंगे नहीं
टरबूज से टकरा कर जहाज़ टूटेगा नहीं

शुतुरमुर्ग़ जब तक झबला नहीं खाएगा
तब तक क्षत्रिय भी गणेश के पेट पर बाण नहीं चलाएगा
और मेंढा उकडूँ को टक्कर मारेगा नहीं

फिर उकडूँ को कबर पर कप फोड़ने की ज़रूरत ही क्या

प्रवासिनी महाकुड़

ओड़िया से अनुवाद : कवयित्री के साथ दीप्ति प्रकाश एवं प्रभात त्रिपाठी

दुःख : कैम्पस में इतवार

'उल्लास एक मौसम
हे मेरे दर्शक
विषाद है शाश्वत काल।'

एक तो है वसंत
तिस पर है इतवार
आज तुम बहुत याद आ रहे हो।

कौन छू जाता है मेरी समग्र सत्ता को
कौन फिर घेर लेता है पूरे कैम्पस को, क्या पता।
आच्छन्न कर देता है सुबह, शाम और रात
क्या पता?सोने में है दर्द बहुत
मगर जाने कहाँ पर होता है दर्द
दिखाया नहीं जाता

सब कुछ देखना मुमकिन होने पर भी
पलकें नहीं उठाई जातीं।

रेलिंग के उस पार तीन सौ मील तक
सन्नाटे का साँय-साँय अनुभव
लगता है दूर दिगंत में मेरे
सुंदर फूस का घर जल रहा है
अनदेखी आग में धीरे-धीरे।
गरमी के दिन मरीचिका की तरह अदृश्य हो जाते हैं
नदी बन कर बह जाते हैं बारिश के दिन
सर्दियाँ मिट जाती हैं कोहरे की तरह
तुम किस में होते हो
कविता में या समय में?
या कविता : समय में
बोलो!

छै की छै ऋतुएँ तो है दुःखों की
तुम जानते हो;
क्या इतवार, क्या सोमवार
हर दिन दुखवार
तब बोलो तो समय से उधार माँगूँगी मैं
कितने साल? बाईस साल .... साठ साल
सौ शरद और फिर इंतज़ार करूँगी
किस मुहूर्त के लिए?
किन दृश्यों के जाल में
सुख बंधन के लिए
बैठी हूँ पता नहीं .....
शायद इंतज़ार ही नही किया मै ने!

जानते हो कदंब के पेड़ में फूल बन कर खिलता है
ललिता का दुःख ...
यमुना की धारा बन कर बह जाते हैं
राधा के अलावा सोलह सहस्त्र गोपियों के आँसू
सारे फूल तो है दुःखों के।
बोल दो तुम कुंतलाकुमारी से
बोल दो कि वह इतना दर्द-भरा मधुर गीत
और न सुनाएँ शेफाली के लिए।

अपना सब कुछ उघार चुकी हूँ मै
चाहे हो जितना दूर
आँसुओ से भीगी नज़रों से मेरे कैम्पस का
सारा कुछ अस्पष्ट-सा दिखता है
और भी धुँधला-सा दिखता है तुम्हारा
दुःखों का क़िला : बड़ा घर
शून्य अस्पष्ट और सुदूर
इतवार आज इतवार
तुम हो दुःख : तुम शाश्वत काल

कैम्पस में इतवार
आज तुम बहुत याद आ रहे हो!

अटूट खेल का मोह

खोजते रहना ही है जीवन
और पाना, मर जाने की तरह

कौन किस को ढूँढता है यहाँ?
ज़िन्दगी ज़िन्दगी को?
मौत मौत को?
आँसू और आग का खेल प्रेम प्रेम को?
तुम मुझे या मै तुम को?

क्या खो जाता है भला!
फूलों से सौरभ, सीपियों से मोती, माटी से रस
बादल से पानी, सूरज से रौशनी, चाँद से चाँदनी
ज़िन्दगी से दुःख, होठों से प्यास, आँखों से आँसू?

बोलो! क्या खो जाता है जिसे खोजा जाता है
सालों महीनों तक!

हर अच्छे मौसम में, हर बुरे मौसम
है तो अभी फूलों में खुशबू , सीपियो में मुक्ता
मिट्टी मे रस, बादल मे पानी
चाँद में चाँदनी, ज़िन्दगी मे दुःख
होठ में प्यास, आँखों में आँसू
सब कुछ मौजूद है, सब कुछ है ज़िन्दगी में

खोजना एक अटूट खेल
जो ख़त्म नहीं होता कभी भी

न इस जनम में
न अगले जनम में

जीत जाने पर रुक मत जाओ
हार जाने पर सरकंडे की तरह टूट न जाओ
ढीला न छोड़ो लगाम को।

एक प्यास बुझ जाने पर और एक प्यास से
तड़प उठो। रेगिस्तान के झरने का पता करो।
देखोगे सिद्धार्थ! ज़िन्दगी अच्छी लगती है या नहीं
यह न भूलना —
    खोजते रहना ही है जीवन
    और पाना मौत के समान।

रुक जा ओ बारिश रुक जा! —2

रुक जा ओ बारिश रुक जा!
मैं ने बनाई है नाव
फाड़ लाई हूँ दीदी की
एक कॉपी से दो पन्ने
टेलीफ़ोन के तार से
सुन पड़ता है पंछियों का गीत
रसोई घर से माँ की पुकार
मै नहीं जाऊँगी।

आज तिरा दी है मै ने नाव
बड़ी दीदी की ससुराल
यहाँ से है दूर बहुत
साथ में तो ले नहीं गई
लिखा है क्या —
आँखों के आँसू

अब हो गए हैं सागर जल
याद आती हूँ मै ख़ूब
नैया मेरी! दीदी से कहना
उस के बिना यहाँ सब कुछ
लगता है सूना-सूना
सामने है गणेश पूजा
परसाल उस ने बनाई थी माला
चाँदनी के फूल पत्तों की!

सूरज दिखता है कभी
कभी फिर छिप जाता है बादल
छाया और उजाले का
खेल तो चलता ही रहता है
रुक जा ओ बारिश रुक जा!
कम होने दे थोड़ा पानी का
ज़िद्‌ख़ोर ज़ोर
तू नहीं जानती क्या अब मुझे
दिखाई देता है सिर्फ़
दीदी का
देवी जैसा चेहरा?

रुक जा ओ बारिश रुक जा! –3

रुक जा ओ बारिश रुक जा!
ईंट और पत्थर से माँ ने
बनाया है चूल्हा
भात खदबदाता है हाँडी मे
बीन लाई थी मैं
आम की सूखी डालियाँ

बापू का पहना अँगोछा एक

सुखाया है बाबू साहाब के मकान की दीवार पर
बापू गया मज़दूरी करने
कह गया है लाएगा
छोटी-छोटी मछलियाँ

छोटा भाई सोया है
चिथड़ों की गुदड़ी पर
कोमल धूप का उजास
ख़त्म होता जा रहा है
रुक जा ओ बारिश! कल रात
भाई मेरा काँपता था
ठंडी हवा की लहर से
घर नहीं है हमारा
जहाँ भी जाते हैं बापू के साथ
वही हमारा घर
टूटा बक्सा, पोटली
लालटेन लिए
पेड़ के नीचे
या टूटा छप्पर

कल से ही भूखे हैं
कुछ भी नहीं था कहीं भी
बड़ी भूख लगी है मुझे

रुक जा ओ बारिश रुक जा
देखे नहीं हैं क्या
मेरी आँखों के आँसू!

देवी

मुझे देवी मत कहो

साल भर में एक बार मत पुकारो मुझे
ऐसे ज़िन्दा रहती नारी, नारी के नाम की
रंगीन अभिलाषा में, आसक्ति के अंतरंग स्पर्श से
मैं हमेशा विराजमान
किस ने बनाया था यह सिंहासन?
इतना बड़ा साम्राज्य
जहाँ तक मेरी आँखें नहीं पहुँचती
वह भी ख़ास मेरे लिए?
सिर्फ़ संबोधन से ही कोई नहीं बन जाती देवी
नारी रहती है हमेशा ही नारी
खुद सृष्टि और खुद ही स्रष्टा
आवेग मेरा अनाहत रहे
और भी रहें सारी कामनाएँ
सपनों के सहारे देवी नहीं आ पाती
जी नहीं पाती
ज़िन्दगी के रंगीन खेल में
नहीं रह पाती मगन
समग्र काल से परे है देवी का परिचय
रूप कथाओं के काव्य कविताओं में
रहस्यभरी, मधुमयी भूमिकाओं में
देवी बन कर फूलों का नैवेद्य नहीं चाहिए / मुझे अपने चरणों पर
इन्हीं हाथों से दे दो
इसी नातिदीर्घ केशराशि में भर दो
अनुराग की नीली अपराजिता, श्वेतपद्म, लोहित मंदार
न बढ़ाओ सोम रस, जायफल की खुशबू से
महकते डाब का पानी काँसे के बर्तन में
दे सको तो दो एक प्याली चाय
मेरा विसर्जन ना करो सात ताल पानी मे
तुम्हारे शहर में रहने का शौक़ मुझे नहीं है
भक्ति गद्‌गद तुम्हारे चेहरे को देखने की चाह नहीं
देवी बनने की ख़्वाहिश कभी थी ही नहीं

देवी बनने से देह के बंधन से मुक्ति मिलती है
पर यह कैसा विरोधाभास
मैं वही अश्रुवर्णा नारी
प्यास और देह की गरमी जिस को
बाक़ी इच्छाओं की तरह
संतुलित और बहुत ही स्वाभाविक।
मेरे प्यार में अगर है तुम्हारा पुनर्जन्म
देवी संबोधन कर मत माँगो मोक्ष
परमप्रिय बन जाओगे मुझे प्यार करके कैसे
उपाय उस का बताऊँ?
देवी नहीं
नारी कहो
मत रखो बाँध कर कविताओं में
या सजा कर मंडप में
जैसी चाही थी ज़िन्दगी, आज वहीं पहुँच कर
माँग लिया है मैं ने खुद को खुद से भोग के लिए
वे सारे के सारे स्पर्श-कातर
तुरीय मुहूर्त
अभी मौजूद यही पर।

एकाकी नारी

उसी दुःख भरे मौसम का एक फूल है प्रियतम!
खुशबू जिस की साल तमाम महकती है हवाओं में।
जी भर कर पीने से पहले होंठ पर ही मिट जाती है
आवेग की चिरहरित प्यास। भला क्या
किया जा सकता था? बहुत पहले ही
जल चुका था प्यार का घना जंगल।
एक बार फिर वसंत जो आया यहाँ-वहाँ-जहाँ-तहाँ
लहराने लगी महकती हवाएँ। उसी दुःख भरे

मौसम का ही एक फूल है प्रियतम! खुद नहीं पहचान पाती
अपनी खुशबू! मगर देखो कैसे खिल उठता है पूरे शरीर में
यंत्रणा-सा नील चंपा पुष्प। खिल उठता है अब निर्जनता की
नदी के कगार पर। नीले आकाश पर सिन्दूरी सूरज उगता है
आहत आशाएँ लिए अपेक्षा की है
नहीं आएगा दूसरा कोई दिन
प्यार के गाँव में जब नाच रही होगी तुम्हारी
प्रिय ऋतु प्रियतम! गुलाबी फागुन
फिर भी करुण भाव से एकाकी फूल
ओह! पी नहीं पाता है अपनी खुशबू
ऐन होंठ पर ही मर जाती है प्यास।

नारी मात्र ही आवेगों का समाहार
थोड़े आँसू
थोड़ा एकाकीपन!

वही नारी। वही विषाद प्रतिमा
उदास आँखों में जिस की नीली करुणा
हर बार निस्संगता अपने पर गिरा कर
चली जाती है। पसार देती है अपने पैरों से
विचित्र अंधकार।
न तो ख़ामोशी के इस सुनसान घर से क़दम बढ़ाया जाता है
न ही रहा जाता है चुपचाप। तूफ़ानी शून्यता
जकड़ लेती है पूरे परिवेश को!
न इस जनम में न अगले जनम मे
अब और आगे कुछ नहीं, सब कुछ आज का यह कठोर क्षण
कैसे प्यार करते हैं सागर और किनारा
कैसे होती है दौनी खलिहान में
एक जगह एकाकार। एक हो जाने का सुरभित प्रयास
प्यार से चेहरे को मुग्ध हथेलियों में थामते

चेहरे को चेहरे के क़रीब लाते वक़्त
जितना क़रीब आ जाने पर भी
निस्संगता खरोंचती रहती है सारमय सत्ता
जर्जरित हृदय की
लाल होंठों पर पलाश की यंत्रणा
काली आँखो मे शून्यता के जापानी खिलौने
डोलते रहते हैं अपने अपने
अकेलेपन मे
धुँधले वियाबान में
कौन है कहाँ पर? जो ले जाएगा इस नारी को सस्नेह
निर्जनता की नदी के किनारे से अपने कोलाहलमय सीने की कोठरी में
बंद कर देगा ममता के कपाट
जिस के अंदर स्वप्निल वर्षा का सीत्कार
भिगो देगा नारी को अपने स्नेह से
गुमनाम बना देगा मुझे प्रेम के अजर अमर गाँव में
हाथ पकड़ कर ले जाएगा पगडंडियों पर
धान के खेत की मेंड़ पर।
पिलाएगा मधुपूरित हवा
स्नेहसिक्त अंजुली मे भर कर
और कहेगा – "विश्वास करो
तुम हो सिर्फ़ तुम्हारी तरह।"
वंशी पर राग आसावरी का आतुर आह्वान
पोंछ लेगा जो यह अकेलापन धीरे-धीरे
हवा सुखाती रही है जिस स्नेहसिक्त घर को। बड़े जतन से आज तक।

विदा कहने का कष्ट सिर्फ़ कहने वाला ही जाने
सीने मे धड़कता है विदा का शोक गीत
आज-सा दिन भी नहीं रहा। सोच कर जी चाहता है लिखने को
करुण कविता।
किस की सम्मति के बाद लिखी जाती है गोपनीय
बातें तमाम एकांत अंतरंग हृदय की

जी करता है आज रात लिख जाने को एकाकी नारी के लिए
करुण कविता, आकाश में जर्जरित मोहग्रस्त यंत्रणा
लौटा देती है बियावान-स्मृति के घर में।

वह अपर्णा सेन की 'छत्तीस, चौरंगी लेन' का
वॉयलेट स्टोनहोम हो या प्रितीश नंदी का अकेला आदमी
हर एक के सीने में है दर्द एक जैसा
प्रेम की तरह विश्वव्यापी एकाकीपन का अनुभव
जो चाहता है उसे न पाने पर ही तो
भीतर इतना अधिक अकेलेपन का राज
खुद जल कर राख हो जाने से ठीक पहले ही
शायद उम्मीद होती है और ज़्यादा प्रज्वलित।

जयप्रभा

तेलुगु से अनुवाद : कवयित्री के साथ पी. वी. नरसा रेड्डी एवं
देवीप्रसाद मिश्र

इसीलिए तो वे ऋषि हैं

परत दर परत
उधेड़े जाते समय
द्रौपदी के मन पर क्या बीती होगी
महाभारत यक़ीनन कुछ नही कहता
जब किसी कीचक ने उस की लटें खीचीं
सुलगती रही उस की पूरी देह
पाँच पतियों की हो कर भी
कितनी छली गई
व्यास क्या समझ पाता कि
क्या लिखने से क्या गुज़रेगा
कहीं भंग न हो पातिव्रत्य
बच निकला कथा को युधिष्ठिर की तरफ़ मोड़ कर
महान राजनीतिज्ञ महाभारतकार
व्यास को आख़िर कथा मोड़ने मे दिक़्क़त ही
क्या है?

इसीलिए तो वे सब ऋषि है
उन के न पत्नियाँ होती है
न बेटियाँ
वे पैदा होते है घड़ों से
उन की माँएँ भी नहीं होतीं

क्यों दुःखी हो यशोधरा

यशोधरा क्यो दुःखी हो!
वे बौद्ध और तपस्वी है
चिन्ताएँ उन्हें कभी घेरती नहीं
जरा और मरण का भय भी नहीं
वे इसे पहले ही जानते हैं

कि ठीक बोधिवृक्ष के नीचे ज्ञानोदय होगा!
वह आधी-रात अनंत यात्रा का आरंभ है
सिर्फ़ तुम्हीं को कुछ पता नहीं
यशोधरा क्यों दुःखी हो
गवाक्ष से सट कर ऐसी दर्द-भरी निगाहें क्यों
तुम्हें सूर्योदय से इतना भय क्यों री?

परवाह नही
तुम्हारी प्रतीक्षा व्यर्थ नहीं जाएगी
कहते है
किसी न किसी दिन दीक्षाव्रत काशाय वेशधारी
भिक्षा-पात्र लिए
तुम्हारे आँगन में भी
हाथ फैलाए चला आएगा
तुम शिथिल देह लिए
दीन-वदन हो
सामने आ जाओगी
प्राण को भीख में दे दोगी

उन के मन में यह उम्मीद कहीं छिपी होगी
यशोधरा अब भी क्यो दुःखी हो
वे बौद्ध और तपस्वी हैं
चिन्ताएँ उन्हे कभी घेरती नहीं
जरा और मरण का भय भी नहीं
अष्टांगिक मार्ग पर तुम
इस तरह तारो को मत गिनो
यशोधरा!
अब तुम कोई त्याग मत करो

कविश्रेष्ठों को माँओं पर कविताएँ लिखना है
उस के लिए ही सही, सहना है!

वह बहुत छोटा बच्चा है
इसीलिए उस ने मातृत्व के बड़प्पन को नहीं जाना
वह अब भी रोने की साधना कर रहा है

.... माँ! मुझे पिता चाहिए! ....
छोटे भाई के रोने से माँ कहीं उस की उपेक्षा न कर दे
माँ का आँचल खींचते हुए
थकी हुई बच्ची पटकती है हाथपाँव।
.... स्टेशन पर पहुँचते ही पिता आएँगे, बेटी! ....

(ठीक इस समय कवि महोदय मातृ-महिमा का गुण-गान करते हैं और
सहन-शक्ति मे माताओं की धरती माँ से तुलना करते हैं।)

.... पिताजी रेलगाड़ी मे हमें बिठाने आते हैं
पर हमारे साथ रेल-यात्रा करने कभी क्यो नहीं आते? ....
फिर से बच्ची सीधे और तल्ख़ी से
अपना सशय प्रकट करती है

तब तक वह माँ 'गृहिणी' के बोझ के नीचे दब चुकी होती
इसीलिए यह कह नहीं पाती
पड़े काम-काजो को छोड़
नए कामो के बहाने बनाते
हम से छुटकारा पाने के लिए
पिता लोग कभी साथ नहीं आते

.... माँ! आइसक्रीम ख़रीदो ना! ...
उस की यह माँग ग़लत तो नहीं
आख़िर बच्चो के भी तो हक़ होते है
.. श्श्ऽऽऽ! मुझे तंग मत कर ...

माँ ने डाँटा जिस के पास एक कौड़ी भी नहीं बची आख़िर
मन में जो नाराज़गी है वह आख़िर किस पर उतारती?
आँसू को पलकों से गिरने की मनाही है!
आख़िर वह भी आदर्श गृहिणी जो है!
रेल के डिब्बे में एक तरफ़
दो खद्दर-धारी गुंडे
अख़बार से राजनीति का नाश्ता कर रहे हैं।

एक कोने में मज़े से बैठ कर
पापड़ बेलन पकड़े मोटी-सी मौसी का
चित्र खींचने में मशग़ूल कार्टूनिस्ट
धुआँ उगलने वाली कॉफ़ी की चुस्की लेते हुए धुआँ चेहरा
घनी दाढ़ी में अँगुलियाँ फिरा रहा है!
अहो मातृत्व कहते हुए
अर्ध-निमीलित
अपनी अर्द्धांगिनी की सेवाओं को स्वीकार करते हुए
औरतों के श्रम-शोषण के बारे में
कभी-कभी ज़ोरदार कविताएँ लिखने वाले
एक वामपंथी कवि महोदय भी विराजमान है!

लेकिन
ढेर सारे सामान के साथ बच्चों को
उन की माँओ को रेलगाड़ी में बैठा कर
उस के बाद सीटी बजाते हुए मज़े से
सेकेंड शो सिनेमा ... ताश खेलने ... अन्य ऐय्याशी के कामों में जुट जाने वाले
पिता के बारे में अनभिज्ञ
मायूस बच्चे
सफ़र के वक़्त
अकेली और निस्सहाय
माताएँ ही क्यो इस तरह दुःख झेलती है

उद्विग्न हो कर बच्चे
कभी-कभी मचल कर सवाल पूछते हैं
आख़िर हमारे साथ पिता क्यों नहीं आते?

नींद! आ!!

आ नींद!
मुझे छोड़ सभी नींद के सफ़र पर निकल चुके है
न जाने कितनी दूर चले गए हैं
पलकें काँप रही हैं उन की
सुदीर्घ स्वप्न-यात्रा है उन की
तुम्हारे अलावा और किसी को जगह नहीं है वहाँ
मै खोल कर देखना भी चाहूँ तो वहाँ कोई दरवाज़ा है ही नहीं
शरीर को भूलने के बाद वे
अपनी-अपनी मानस-यात्राओ पर होते है
अपने-अपने उन के अंतरंग युद्ध होते है
अँधेरे बिलों से गुज़रते हुए
वेदना के जंगलों से होते हुए
चाँदनी वाले आसमानों के बीच से टहलते हुए
हर कोई अपने रास्ते चला जाता है
वह निरा एकांत मार्ग है
वह सारी सुख चेतनाओं का केन्द्र है
सभी नींद के सफ़र पर निकल चुके है मुझे छोड़ कर
मेरी पलकों पर तो
अभी तेरी हरी झंडी हिली नहीं
नीलमणि जला नहीं
तुम आई नहीं
तुम्हारे मिलन के लिए सुलगती
न बुझने वाली यज्ञ-ज्वाला हूँ मैं! नीद! आ।
मेरे
सपनो के सभी रास्ते अगम्य हैं

मेरी छाया भी मेरा साथ नहीं देती
फैला हुआ जटाधारी वटवृक्ष है मेरी विचार-प्रक्रिया जो
मुझे सपनों में भी नहीं छोड़ती
आ री नींद! प्रगाढ़ संभोग-सी!

बादलों से ढँके आसमान में धुँधलाए चाँद की तरह मत आ
दम घुटता है मेरा
कारख़ानों के धुएँ की तरह मुझे मत घेर
दम घुटता है मेरा
झींगुर के गीत-सी मत आ! दम घुटता है मेरा!
घेर ले मुझे धीमी हवा की तरह! कालिन्दी की लहर की तरह
रात को तीसरे पहर तक मेरा जागना
पहरेदार को गवारा नहीं
धीरे-धीरे सभी नींद के सफ़र पर निकल चुके है मुझे छोड़ कर
देखो तो छोटा बच्चा नींद में कैसे हँस पड़ता है
स्कूल में बहुत शैतान है वह!
क्या उस के सपनो को चाकलेटों ने मिठास दी है
क्या उस के सपने साथ पढ़ने वाली हिमबिन्दु की हँसी उड़ाते हैं
क्या तुम्हें कुछ पता है?
देखो,न जाने क्यों वह खिलखिला कर हँस रहा है
स्कूल में बहुत शैतान है वह
उस के जैसी थोड़ी-सी ख़ुशी
नींद! मुझे भी ला दे!
उड़ते मोर के पंखो की तरह उड़ते हुए मेरी गोद में आ जा।
इन फटी-पुरानी किताबों की यादें मुझे नहीं चाहिए
नदी के तट पर सुख-सिकताओं वाला गीला फ़र्श चाहिए!
नींद मेरे ऊपर बरस! मुझ पर मेहरबान हो!
झूले मे छोटी बच्ची की तरह मुझे अपनी मधुर कल्पना बना दे
झुलाती जा
तू माँ का प्रतिरूप है
पढ़-पढ़ कर आँखों की नसे थम गई है

अब मुझे कोई जिज्ञासा नहीं
थोड़ी देर मुझे सोने तो दे
नींद! धीरे-धीरे मेरे भीतर से मेरी टहनी-सी समा जा!
यह जागना कंजूस पति की तरह है
जो पल भर के लिए भी आराम करने नहीं देता
अब और नखरे मत दिखा तू
इस रात का भी सवेरा होगा
अब देर मत कर
पलक झपकते ही आँखों में
निर्बन्ध शृंगार की तरह आ आजा
अपनी बाँहो में मुझे घेर ले।
नींद! ओ मेरी मोहिनी आ जा।
पहाड़ की आड़ में छिपे चाँद की तरह आ जा।
सर्प की तरह आहट किए बिना आ जा।

मैं अपनी सुध खो बैठी हूँ
नींद के सफ़र के लिए
इन दिनों .... इस संसार में
कितना भी काम करूँ नाकाफ़ी लगता है ....
थक गई हूँ मैं
अनजाने या अचानक बुला ले मुझे!
चुपचाप घेरते हुए चाँदी के लेपन-सी! नीद, आ जा!
धुआँ-धुआँ तपी देह शीतल कर
मोहन राग मे
बादल के टुकड़े के बेड़ो पर
मुझे उठा ले चल! अरी ओ नींद! आ जा!

दर्द

रेल जब तेज़ रफ़्तार से दौड़ रही होती है
तो ढहे हुए क़िले की तरह पीछे छूट जाना ही दर्द है

अँधेरे के सामने समर्पण कर चुकी शाम की तरह धुँधलाकार
घुल जाना ही दर्द है
गिरता हुआ आँसू ही है दर्द। चिता की राख है दर्द!
कहे और अनकहे मन का मायाजाल है दर्द

कैसे बयान करें दर्द को
दर्द के बाद के ख़ालीपन को

दर्द के लिए भाषा अपर्याप्त है
वह गिरते हुए पीले पत्ते-सा है
पुरानी बावड़ी की तरह है
मुरझाए हुए सूखे पौधे-सा है
आँगन में लगभग मिट गई अल्पना-सा है

जब दर्द में होते है तो दर्द से बाहर आने की उम्मीद मुश्किल लगती है
कड़ी धूप में पहली बारिश का अंदाज़ा भी मुश्किल होता है

बिसूरते हुए अकेले टूटते हुए
कैसे बयान करें दर्द को
दर्द के बाद के ख़ालीपन को

दर्द के लिए भाषा अपर्याप्त है
घायल देह की तरह है वह
कभी न बरसने वाला बादल है वह
वह कभी न मरम्मत हो सकने वाली घड़ी है
वह दिवंगत पिता की स्मृति की तरह है

जलप्रपात स्नान

न कोमल है
न मंद मरुत राग है

न सुहावना और न ही आह्लाद
फिर भी आनंद ही आनंद है।
मानो शत्रु से सीधा मुक़ाबला हो
बिजली को पर्वत को
गर्जन को आवेग को आलिंगनबद्ध करने-सा
बादल बन गरजने-सा
हिम मानव के साथ मोह करने-सा
भूमि की तरह काँपता हुआ-सा
जल-धार को चुनौती देने-सा वह खड्ग-चालन है
जलप्रपात स्नान
उच्छ्वास-निश्वासों के मध्य
यौवन का आवेग है जलप्रपात स्नान
कठिन परिश्रम है जलप्रपात स्नान
पहाड़ो के बीच
सूरज को भी बाँधनेवाले घने वन के बीच
गुफा के अँधेरे से निकलते चाँद जैसा जलप्रपात!

फिर भी न कोमल है
न मंद मरुत राग है
न सुहावना है और न ही आह्लाद
फिर भी आनंद ही आनंद है।
ठंडी हवा शरीर को मंद मंद जब कँपाती है
आँचल को कस कर बाँध कर
अचानक फैले हुए दोनों बाहुओं से
सखा के गले को बाँधने-सा
अनंत जल-प्लावन में घुल-मिल कर
मैं जल बन .... जल मैं बन
प्रवाहित होना विश्व सम्मोहन है
विश्व सम्मोहन! वह खड्ग-चालन है!
जलप्रपात स्नान! जलप्रपात स्नान!

सुरजीत पातर

पंजाबी से अनुवाद : कवि के साथ मोहनजीत एवं वीरेन डंगवाल

कविताएँ

एक

मातम
हिंसा
ख़ौफ़
बेवसी और अन्याय
ये है – आजकल मेरे दरियाओं के नाम

दो

हमारे सीने मे तो पुत्रो,
ख़याल हैं मैले
खंजर तुम्हारे
चमकते उजले शफ़ाफ़ है

प्यारे मुरीदो
तुम हमारे कहे की गूँज हो
आओ तुम्हे
मुरशिदो के क़त्ल मुआफ़ है

तीन

मै दो तीन क़दम ही चलता हूँ
कि परदेस आ जाता है
मेरे लगाए हुए पेड़ों के साये
कितने छोटे है

घरड़-घरड़

मैं छाते जितना आकाश हूँ गूँजता हुआ
हवा की साँय-साँय का पंजाबी में अनुवाद करता
अजीबो-ग़रीब दरख़्त हूँ
हज़ारों रंग बिरंगे फ़िक्रों से विंधा
भीष्म पितामह हूँ छोटा-सा
मैं तुम्हारे सवालों का क्या जवाब दूँ
महात्मा बुद्ध और गुरु गोविन्द सिंह की मुलाक़ात
के 'वेन्यू' के लिए
मैं बहुत ग़लत शहर हूँ
मेरे लिए तो बीबी की गलबहियाँ भी कटघरा है
क्लास रूम का लैक्चर स्टैंड भी।
चौराहे की रैलिंग भी
मैं तुम्हारे सवालों का क्या जवाब दूँ
मुझ में से नेहरू भी बोलता है माओ भी
कृष्ण भी बोलता है कामू भी
वॉयस ऑफ़ अमेरिका भी, बी. बी. सी. भी
मुझ में से बहुत कुछ बोलता है
नहीं बोलता तो बस मैं नहीं बोलता।

मैं 8 बैंड का शक्तिशाली बुद्धिजीवी
मेरी नाड़ियों की घरड़ घरड़ शायद मेरी है
मेरी हड्डियों का ताप-संताप शायद मौलिक है
मेरा इतिहास वर्षों में बहुत लंबा है
कर्मों में बहुत छोटा :

जब माँ को ख़ून की ज़रूरत थी
मैं किताब बन गया
जब पिता को लाठी चाहिए थी
मैं बिजली की लकीर की तरह चमका और बोला :

कपिलवस्तु के शुद्धोधन का ध्यान करो
माछीवाड़े* की ओर नज़र करो
गीता पढ़ी है तो विचारो भी :
'... कुरु कर्माणि संगङ् त्यक्त्वा ....'
ऐसा ही वहुत कुछ जो मेरी भी समझ से बाहर था
मै ने कहा
और निकल पड़ा

रास्ते में भूमिगत साथी मिले
उन्होंने पूछा :
चलोगे? हमारे साथ सलीब तक
क़ातिलों के क़त्ल को अहिंसा समझोगे?
गुमनाम पेड़ से लटक कर
मसीही अंदाज़ में
सरकंडे को भाषण दोगे?

जवाब के तौर पर मेरे अंदर
कई तसवीरें उलझ गईं
मैं अनेक फ़लसफ़ों का कोलाज-सा बन गया
आजकल कहता फिरता हूँ :

सही दुश्मन की तलाश करो
हरेक आलमगीर औरंगज़ेब नहीं होता

जंगल सूख रहे है
बाँसुरी पर मल्हार बजाओ
प्रेत बंदूकों से नही मरते
मेरी हर एक कविता प्रेतों को मारने का मंत्र है
मसलन वह भी
जिस मे मुहब्बत कहती है :

* माछीवाड़ा : वह जंगल जहाँ अपने बेटों की शहादत के बाद, अपने परिवार से बिछुड़े गुरु गोविन्द सिंह ने कुछ समय बिताया।

मैं दुर्घटना-ग्रस्त गाड़ी का अगला स्टेशन हूँ
मैं रेगिस्तान पर बना पुल हूँ
मैं मर चुके बच्चों की तोतली हथेली पर
उम्र की लंबी रेखा हूँ
मैं मर चुकी औरत की रिकार्ड की हुई
हँसी भरी आवाज़ हूँ :

हम कल मिलेंगे

मेरी प्रतीक्षा

लगता है
हो रही है कहीं और मेरी प्रतीक्षा
और मैं यहाँ बैठा हूँ

लगता है
मैं ईश्वर के संकेत नहीं समझता

पल पल की लाश
पुल बन के
बिछ रही है मेरे आगे
लिए जाती है मुझे उस दिशा में
जो मेरी नहीं

मेरी उम्र का क्षण क्षण
गिर रहा है
कंकरों की तरह
मेरे ऊपर
बन रही है बहुत ऊँची ढेरी
नीचे से सुन.पड़ती नहीं
मुझे भी आवाज़ मेरी

कभी जब जागता हूँ
आधी रात
सुनता हूँ कायनात
तो लगता है
बहुत बेसुरा गा रहा हूँ मैं
उखड़ गया हूँ सब के स ... से

मुझे रौंदने पड़ेंगे अपने पदचिह्न
लेने पड़ेंगे वापिस अपने बोल
कविताओं को टाँगना पड़ेगा उलटा
घूम रहे तारों-नक्षत्रों के बीच
थरथराते ब्रह्मांड के बीच
सुन पड़ती है
किसी माँ की लोरी

लोरी से बड़ा नहीं कोई उपदेश
चूल्हे मे जलती आग से बड़ी नही
कोई रौशनी

लगता है
कही और हो रही है मेरी प्रतीक्षा
और मै यहाँ बैठा हूँ।

वादक

अब जब वह
साज़ो की दुकान के पास से गुज़रता है
तो नज़रे झुका लेता है

ये सारे साज़
उस के घर पड़े है

कभी वो भी समय था
जब मैंडोलिन के दाम पूछ कर गुज़र जाता
और तारों को झनका कर सोचता :
साज़ उस का नहीं होता
जो उसे ख़रीदता है
उस का होता है जो सुंदर धुनें निकाले

और एक शाम
उस के घर भी हुई मैंडोलिन की आमद
कई शामे कई रातें कई दिन बीत गए
हारे हुए खीजे हुए उलझे हुए
उस के मन में जो धुनें थी
न आईं वो हाथों में

और उस ने सोचा
हर साज़ हरेक साज़नवाज़ के क़ाबिल नही होता
मेरा साज़ कोई और है

दूसरा साज़ तीसरा साज़ सातवाँ साज़
उस ने कई साज़ बदले
उस के मन में जो धुनें थी
वो हाथों में न आईं
अब वे साज़ उस के सपनो मे आ कर डराते है उसे
वे सभी साज़ इकट्ठे
बेसुरे मातम जैसी करते है आवाज़
हमें आज़ाद कर दे हम तेरे नही हैं

वह जागता है
साज़ चुपचाप सोए होते
चमकते साज़, कसे तार उस के अपने
फिर भी वह
किसी भी साज़ के तार को

छूता नहीं
डरता
अगर उस ने छुआ तो
टिकी हुई रात में साज़
कूक उठेगा ऊँचा :
चोर, कोई चोर पराया आदमी

उस के हाथ गुनहगारों की तरह काँपते
कमीने हाथ नाकारे हाथ उठा कर
वह मन ही मन साज़ों से कहता है
तुम क्या जानो ज़ालिमों, जो धुनें हैं मेरे मन में
तुम स्थूल हो, सूक्ष्म को क्या जानो

वह बोले चला जाता
यह उम्मीद भी करता
कि उस के इन बोलों से
कोई साज़ पिघलेगा
और बजेगा अनाहत नाद
आख़िर हार कर वह लेट जाता,
अपने काँपते हाथों को
छाती से लगाए

छाती के अंदर धुने है
छाती के ऊपर हाथ
वह अक्सर सोचता
फ़र्क़ तो थोड़ा-सा है।

एक पशु-कथा

चली है गाड़ी
गाड़ी की सीटों पर बैठे

कुछ हैं भेड़िये
कुछ हैं मेमने

गाड़ी लाँघती गई स्टेशन
नदियाँ, जंगल, खेत, पहाड़
नगर, बस्तियाँ, शहर उजाड़।
सात-आठ घंटे चलने के बाद
क्या देखा डिब्बे में मैं ने
सभी मेमने बने भेड़िये
और भेड़िये बने मेमने।

आप यक़ीन करें न करें
यह सब हुआ अपने देश में
और मनुष्यों के भेष में

मैं तुझे छूने को था

मैं तुझे छूने को था
बहुत चीत्कार हुआ अँधेरे तड़प उठे
बिलखे शंखनाद
घड़ियाल खड़क उठे
चूल्हों से लपटें निकल कर
माँओ, पत्नियों, बहनों
के सीनों में सुलगीं
एक औरत खुले बाल
बिलखी और दौड़ पड़ी
उस के क़हर से काँपे
तमाम देवताओं के पत्थर
और राजाओ के मुकुट।
सद्गुरु हुए कुपित
हँस पड़े मेरे चेले

खींच लिया मैं ने अपना हाथ
तारों और तत्वों से
हटा लिए मैं ने होंठ
राधा को मोहने वाली
इस मधुर बाँसुरी से
डर गया मैं रुक्मिणी के
ख़ामोश रुदन से
मेरे क़रीब आया
एक उजला पन्ना :
कुछ भी लिख दे मुझ पर
कर दे नेकी-बदी की
कोई नई हदबंदी
क़ुदरत और सभ्यता का
एक और सुलहनामा
अपनी इच्छा का तू
एक नया उपनिषद् रच दे
मुझ पर कुछ भी लिख दे
तू ख़ुद मुक्त हो जा
उस को भी मुक्त कर दे
तू ख़ुद तो पानी बने
और उस के सीने में काठ सुलगे
यह तो अच्छा नहीं।

मेरे क़रीब आया
एक साफ़ उजला पन्ना
लिखने से डर गया मैं।

दो वृक्षों की बातचीत

मेरी सूली बनाओगे
कि रबाब

जनाब
कि मैं यूँ ही खड़ा रहूँ सारी उम्र
करता रहूँ पत्तों पर
मौसमों का हिसाब-किताब
जनाब
कोई जवाब

मुझे क्या पता, मुझे क्या भेद
मैं तो खुश हूँ तुझ जैसा एक पेड़
तू ऐसे कर
आज का अख़बार देख

अख़बार में कुछ नहीं
झड़े हुए पत्ते है

फिर कोई किताब देख

किताबों में बीज हैं

तो फिर सोच

सोच में कुल्हाड़ी की चोट है
दाँतो के निशान हैं
राहगीरों के पदचिह्न
या मेरे नुकीले नाख़ून
जो मैं ने बच रहने के लिए
धरती की छाती में गाड़ रखे है

सोच
सोच
और सोच, और सोच

सोच में क़ैद है

सोच में ख़ौफ़ है
लगता है धरती के साथ बँधा हुआ हूँ

या फिर टूट जा

टूट कर क्या होगा
वृक्ष नहीं तो राख सही
राख नहीं तो रेत सही
रेत नहीं तो भाप सही

अच्छा फिर चुप कर

मैं कहाँ बोलता हूँ
ये तो मेरे पत्ते हैं
हवा में डोलते

सुकुमारन

तमिष़ से अनुवाद : कवि के साथ एन. बालसुब्रह्मण्यन एवं विमल कुमार

मूर्तियों का युग

..... लेकिन
यह है मूर्तियों का युग

मूर्तियाँ हर रास्ते में निकल कर खड़ी हैं
मूर्तियाँ
हवा की यात्रा की दिशा बदल देतीं हैं

मूर्तियाँ ज़्यादा हैं
पुलिस वालों से भी
साइन-बोर्डों से भी

मूर्तियाँ
मृत्यु का उपहास करती हैं
मरे हुए लोग,
मूर्तियों में ज़िन्दा खड़े है

लेकिन
यह है मूर्तियों का युग

'कहाँ जा रहे है महाशय?'
'फलाँ से फलाँ जगह।'

'ऐसे नहीं,
इस तरह कहिए
इस मूर्ति से उस मूर्ति तक
उस मूर्ति से मूर्तियो तक'

लेकिन
यह है मूर्तियों का युग

किस से बनाते हैं हम मूर्तियाँ?

पत्थर, मिट्टी, लकड़ी, धातु से
किसलिए बनाते हैं मूर्तियाँ?
'काल, मन, ज्ञान, प्रेम के लिए।'

भय के अंधकार को उरेह कर
ईश्वर की मूर्ति
शब्द के नमक को टाँक कर
कवि की मूर्ति
स्वप्न-तुहिन से
प्रेम की मूर्ति
रक्त के सूर्य से
स्वतंत्रता की मूर्ति

क्यों बनाते हैं मूर्तियाँ?
'काल, चित् , उँगली'

लेकिन
यह है मूर्तियो का युग

इन मनहूस मूर्तियों को
किस से बनाया हम ने?
पत्थर के मौन से नहीं
वृक्ष की करुणा से नहीं
धातु के घोल से नहीं
काल के हृदय से नही

इन मूर्तियों के उँगली हिलाने पर
हड़बड़ा जाते हैं सारे पथ

इन मूर्तियों की जुबान हिलते ही
शब्द हो जाते है दुर्गन्धित
मैल जमा करके

बनाईं हैं हम ने
ये मूर्तियाँ
क्योंकि यह है मूर्तियों का युग

अपना-अपना घर

एक ही घर में रहते हैं हम सब
एक ही घर में
रहने पर भी, अलग-अलग घरों में रहते हैं हम सब

मेरे घर की दीवार पर तुम्हारी तसवीर
तब भी
तुम्हारा नहीं है
मेरा घर

तुम्हारे घर की दीवार पर
मेरी तसवीर
तब भी
मेरा नहीं है तुम्हारा घर

मेरा घर मेरा है
तुम्हारा घर तुम्हारा
न मेरे घर के दरवाज़े से
तुम घुस सकते हो
न तुम्हारे घर के दरवाज़े से मैं

क्या घर में रहते हैं हम
या हैं उन में क़ैद
नहीं आता मेरी समझ में
तुम्हारी समझ में?

नामों के बारे में कविता

नाम में क्या रखा है?
बात सही है
पर बिना नाम के क्या है कोई चीज़?

आदि मानव की तरह
मैं नाम रखने लगा हर चीज़ का

प्रकाश का
शब्द का
शब्द के अंधकार का
पर्वत के मौन का
वृक्षों की करुणा का
वन के पत्तों का
पवन के गीत का
तृण की सरलता का
फूलों की स्मिति का

समुद्र की लहरों का
रेत के कसैलेपन का
रास्तों की दूरी का
भोजन के स्वाद का
स्तनों के वात्सल्य का
वाद्य-यंत्र के हृदय का
वर्षा के संगीत-स्वर का
नदी की मलिनता का
पक्षी के पंखों का
शिकारी कुत्ते की आँखों का
कीटाणु के परिवेश का
सूर्य की घड़ी का

तारों की गुनगुनाहट का
वाहन के पहियों का
पिशाचों के पद-चिह्नों का
बाहर के अकेलेपन का
घर की आत्मीयता का
मैत्री के मदिरा-प्यालों का
प्रेम के क्षणों का
कंप्यूटर-कनेक्शन का
संडास की बदबू का
ईश्वर की अर्थी का
नामों के नामों का

चेहरों के जुलूस में
घूमा कुतूहल से
'कौन हो' – गरजा स्वर
'मनुष्य'
'च्च ... '
कह कर चली गई
व्याधि महाकाल की

अपना
अब नाम क्या रक्खें हम?

यह शताब्दी : तीन दृश्य

दृश्य एक

मनुष्यों की तरह कटे हुए थे पेड़
उन के धड़ों से अभी भी हो रहा था रक्तस्राव

कल इसी रास्ते पर दिखा विरल सूर्योदय

पर्वत शिखर पर
सूर्य के मुख पर सृष्टि के आदिम मनुष्य की मुस्कान
पक्षियों की चहचहाहट
छायाओं की करुणा
पत्तों के समुद्रों की निरंतर लहरें
हवा के पार्श्व में फूलों के उद्घोष
प्रकृति : मनुष्य का पहला कुतूहल
आज यह वन मरुस्थल-सा जलता है
कटे वृक्षों के बीच
धूप हुआँ-हुआँ कर रही है

वृक्षों के घाव में मौन निरपराध का
सरकारी काग़ज़ में चांडाल का दर्प
वृक्षों, मनुष्यों के बीच
चमक कुल्हाड़ी की

वीरान इस धरती पर
फड़फड़ाती है छटपटाहट अपने डैने

दृश्य दो

एक रिपोर्ट :
हमारी यह शताब्दी
बेहोश पड़ी है ऑपरेशन की मेज़ पर
उसे तकलीफ़ है साँस की
जिगर में ख़राबी
हम इंतज़ार में खड़े हैं शवगृह के आसपास

दृश्य तीन

मृत्यु के हाथों से गिरी और टूट गई रात उस शहर की

फैल गई शवों की दुर्गन्ध
सर्वत्र

गिरजाघरों से आते आख़िरी घंटे ने
ढाँप लिया दीन-हीन क्रंदन
पीढ़े से न हिलने वाला ईश्वर — मूँद ली अपनी खुली आँखें

वक़्त से पहले लौटे नीड़ो मे पक्षी मर गए
जड़ हो गए जानवर
खड़े-खड़े
मर गई निःस्पद हो कर वनस्पतियाँ
एक क़दम और बढ़ गया विज्ञान
लाशें घसीट कर

हवा के पहियों पर सवार
मृत्यु ने खदेड़ा
पैरों में प्राण लिए
भाग रहे लोग, आया प्रलय जैसे

उस मरघट में हुई सुबह
विषैले मेघों से
सूर्य के केश हो गए सफ़ेद
शवों के ढेर में
आग की निरपराधिता

अख़बार की सुर्ख़ियों में
एक और घटना
सरकारी काग़ज़ में चांडाल का दर्प
मृत्यु का अदृश्य जाल सब जगह फैल रहा
खोने का आर्तनाद खो रहा दिशाओं में
लकड़ियो की तरह जमा कर दिए गए थे मनुष्य

मुसाफ़िर का भजन

एक ही त्रासदी के
अलग-अलग पात्र हैं हम
इसलिए
मेरा मै आत्मनिष्ठ नहीं
हवा की तरह है
वस्तुनिष्ठ

आजीवन घूमना ही
भाग्य में है जिस के
वह है कितना भाग्यवान
वह है अशांत
जो है अशांत, वह है भाग्यवान
जीवन के सामने वह एक चुनौती

बस तीन क़दम की है
ख़ुशहाली की गली
दुख का मरुस्थल अंतहीन

मै हूँ भट्ठी से
निकली आह
अंगारे पर गिरा आँसू

मेरा दृश्य बदल रहा है
सूख गया है वहाँ
नदी का संगीत
घोसले उजड़ गए हैं वहाँ
भटक रहे तोते
वहाँ जलती धरती पर
पिघल रहीं वनस्पतियाँ

मेरी चेतना
लड़खड़ा रही
अंधे की तरह
खो गई जिस की
मेले मे लाठी
मन की रात्रि का
अँधेरा पार कर
सुनाई पड़ती है
घड़ी की चीख़
समय बीतता जा रहा है
एक और दिन झरता है
घायल चिड़िया की पलको की तरह
उतरता है
अंधकार

शाम के कोलाहल को
अपनी आँखो से चींथ कर
भागता है एक पागल मनुष्य

हे मेरे महाकाल!
तुम्हारी छाया मे
निश्चिन्त है केवल पागल मनुष्य

भग्नावशेषों से फूटता है मेरा गीत
घावो की लौह-गंध है शब्दों मे मेरे
अब होगे कड़वे ही फल मेरे मैदानो मे

यहाँ से चल देना चाहिए मुझे
संघर्ष — सफ़र ही ढाढ़स हमारा

यहाँ मै ने सुना
अभी वक़्त नहीं हुआ

अभी वक़्त नहीं हुआ

तब भी हवा में दिन-ब-दिन
बढ़ती जा रही हैं
चीख़ें, आहें
असंतोष की रुलाई
आँसू में है नमक की गंध
मेरी आस्था
रस्सी पर चलते हुए नट के हाथों का बाँस

अँधेरा पार कर
कुछ और सुनाई देती है
घड़ी की आवाज़

चिर धुआँए
इस से तो अच्छा है
जल जाना एक क्षण

पालतू पशु

शिथिल थे अंग उस के
बदन अपना उस ने समेट रखा था ऐसे
प्राण निकलने को हों आतुर जैसे

ख़ुद को सिकोड़ कर
सूँघे उस ने पाँव मेरे
देख रहा था मैं उस समय कहीं और
दया उमड़ आई
आँखें थीं निस्सहाय उस की
फेंके मैं ने दो शब्द उस की ओर
भूख मिटी पर वह नहीं हटा

साये का मेरे पीछा करने लगा
समय बीतने पर
उस के पैर, मुँह और रोएँ बढ़ने लगे
दाँत, नख उगने लगे
आँखों में मँडराने लगा क्रोध

डर कर इस से
मित्रगण मेरे मिलने से बचने लगे
बच्चे छिपने लगे
वह और भी बढ़ा
बढ़ते-बढ़ते
मुझ से भी बड़ा हो गया
दाँतों में उस की क्रूरता चमकने लगी
तब भी मै रहा चुप
यह सोच कर कि वह कुछ नहीं करेगा

उस की गुर्राहट से
भग होने लगी मेरी शाति
उस के बिखरे रोओ और मलमूत्र से
फैलने लगी मेरे कमरे में
बदबू
तंग आ कर
बाँधा उसे मै ने
अपने आशा और विश्वासों की ज़ंजीर से
टहलते समय
ज़ंजीर घसीटता
वह भी साथ मेरे चलने लगा
हुआ जब मै कमज़ोर
मुझ को वह खींचने लगा
ज़ंजीर मे उलझ कर
दम मेरा घुटने लगा

फँस गया मै
निकलूँ कैसे
यह चिन्ता बन गई मेरी नियति

एक दिन जब मुझे लगा
ज़ंजीर हो गई ढीली
तो मै हुआ बहुत खुश
चलो, अच्छा हुआ!
वह ग़ायब हो गया

लेकिन
मेरे मन में है
निरंतर भय
मुझ से कभी अलग न होने वाली ज़ंजीर
के दूसरे छोर पर
कहीं वह अभी भी न हो छिपा
किसी अनजाने कोने में।

अनुराधा महापात्र

वाङ्ला से अनुवाद : कवयित्री के साथ समीरवरन नंदी एवं प्रयाग शुक्ल

जिन्नकथा-1

कोई फागुन नहीं, पूर्णिमा-रहित फागुन की
इस शहर में शून्यता है — किसी भी विरह का भान तक नहीं
घर फ़्लैट है — सघन हरियाली नहीं . . .

दुत्कारे जाते हैं पागल भिखारी यहाँ मरते है बेमौत
तब भी बच्चा और आदमी का चेहरा है
तुम्हारी पूर्णिमा ले कर चुपचाप हूँ।

दु:ख की गहराइयों का अर्थ है
पार्क सर्कस का आकाश देख कर गा रहा हूँ टेर —
आकाश और डूबा चाँद — मँडराता पेड़
घूमता हुआ दरवेश।

आज की रात — किस के लिए
निरीक्षण करता है — नीम
हस्पताल का बेड, ज्योतिष-विश्वासी लेखक
पूरा फ़ुटपाथ स्टेशन गाँव
बचपन यौवन, बुढ़ापे का ज्ञान और ऐसा कि सारा अभिज्ञान
काम आएगा केवल रचना संग्रह मे ?
प्राण का सारा प्यार ऑफ़सेट प्रेस मे बदल जाएगा।
हे दरवेश, हे अकाल बसंत पूर्णिमा
मुझे करो देशांतर — प्रेस, प्रकृति-विहीन
ये सब भीड़ की निष्ठुरता, पैसा, प्रसिद्धि, ईर्ष्या
मुझे देशातर करो।

मातृत्व-हीन स्त्री और पुरुष के बीच द्वंद्व से मुझे मुक्ति दो—
प्रेमविहीन प्रसिद्धि, क्रातिकारी और विख्यात कवि की दीवार से
मुक्त करो मुझे—
हरित करो दूर्वादान को, कपालेश्वरी के तीर पर, पानी की सहजता से
हे दरवेश, यदि जितने तालाब और पेड़ है वे हृदय समान हो जाएँ

एवं विरह और पूर्णता हृदय के समान हो जाए
तो मैं कभी भी मनुष्य के शोक और विरह के
अंधकार और पूर्णिमा के अनंत धागों में लिपटा
प्राचीन पेड़ बनना, पीर मज़ार बनने को राज़ी हूँ।
हे दरवेश
बनने को इक्कीसवीं सदी का आधुनिक
हृदय की आँख को थिर करना
और नहीं
साल दर साल श्रेष्ठ संकलन मे छपना

मनुष्य को प्यार करना, जल-प्रवाह में करना स्नान
डूब की तरह हृदय के मान-सम्मान को मानना
अब और नहीं —
मज़ाक में फ़ालतू चले जाना
और नहीं

दुहाई दरवेश
हमें पुरातन करो . . . आनंदित करो
देशांतर करो . . .

जिन्नकथा-3

ग्राम-रहित, वर्षा-रहित चींटियों की छाया पहचान कर
इस बार आया है घूमने
जिन्न गाँव-टीले पर।
रूपनारायण, रसूलपुर, दामोदर, तेरपक्का नदी घूम कर —
देखीं उस ने, सड़े सेव की फाँकों-सी घटनाएँ शहर की,
आ पहुँची गाँव मे — इंद्रजाल, ब्लू फ़िल्म,
विप्लव के विज्ञापन नए-नए —

पागल एक, बिल्ली-सा, पाँवों में पड़ी हुईं जिस के ज़ंजीरें,
केवल देखता वही, दिन भर बैठ
नीचे गुलमोहर के, सिहरन जिन्नकथा की
भरी गुलमोहर में,
खिलता है गुलमोहर आज भी गाँव में
गए हैं भूल पर गाँव के लोग यह,
आईने में सैलून के देख कर पीला
मुँह निज का, जगती है वेदना
पल भर को –
तो क्या, तो क्या पृथ्वी पर है अब भी
गुलमोहर!

आ गई मशीनी नाव, अजंता हवाई चप्पल,
परिवार कल्याण केन्द्र, नदी गई और दूर –
फैल गया मैदान, चरते मवेशी जहाँ!
लोरियाँ-थपकियाँ बुआ और मौसी की अब नहीं,
पिचके-गाल बच्चों के, मुख पर लकीरें चिन्ताओं की,
अंजन भी आँखों का, जैसे रासायनिक –
जिन्न यह देख-सुन अवाक् है।

भागता नहीं कोई स्कूल छोड़
मारते नहीं मास्टरजी खजूर की छड़ी से,
सिन्नी, कटहल की आड़ में कहीं नहीं
खेल अब छुपन-छुपाई का।
पीरों की मज़ार पर जाना दौड़,
माँगनी दुआ,
सुनना हवा को, जो बहती हो पेड़ों पर,
यह सब अब कहीं नहीं।

गंध नहीं कामिनी फूल की, मचान पर
अपराजिता की, नींद नहीं आती किसी भी

तरह, जिन्न को!
जाग कर रातों को, घूम-घूम गाँव-रहित
गाँवो में, जलती है जिन्न की आँखें।

फिर भी वृक्ष लेते हैं नींद।
बच्चे के हाथों में उलझी नहीं डोरी,
उड़ती नही हवा में पतंग
ताड़ पत्तों की वंशी दूर,
मैदान पर, बजती नही —
चारों ओर भरी सनसनाहट बस,
खीर और शिशु उत्सवहीन जनपद, घर —
पर दूर दूरातर, पथ और पोखर, कलमी फूल,
नन्हीं चिड़िया दिखने के बाद,
गाँव उसे ही तो बुलाता है —
एक बार आ कर जिन्न देख जाए —
गाँव और शहर,
जिन्न बन कर ही,
न कि वैसे जाते जैसे, शिखरों
की अंतिम चढ़ाई पर लोग।

जिन्न पर आ कर अकेला है, और अधिक,
प्रेम कर इकतरफ़ा, रात-दिन प्रेम कर,
अपने में डूबा हुआ,
करता प्रतिवाद बस मन ही मन,
आती जब गंध तैर कामिनी फूल की,
अनजानी क़ब्र से।

ढहती दीवार क्यों, आकाश जाता है सूख क्यों,
गर्भ ठहरने पर, गंध क्लांत गाढ़ी यह
उठती क्यों दवाओं की।

क्यों काली बिल्ली की आँख से,
छिप जाती बच्चे के चेहरे की रौशनी।
जिन्न बस रुद्धश्वास,
देख नक्षत्रों को, चलता ही जाता है।
कोई जाता विदेश उसे ही मान स्वर्ग,
जैसे पास ईश्वर के, दूर आकाशो मे!
जिन्न यही सोचता — होंगे जब सारे ये
गाँव शेष, तब उन से दूर का प्रवास वह,
और मधुर होगा क्या?

जिन्नकथा-5

गहरी रात में मज़ार से निकल कर जिन्न को भी
आकाश की छाया बराबर प्यार से पूर्ण पिता की तरह हरे काले पोखर
के पार बैठी कन्या को बनबीबी की कथा सुनानी पड़ती है
तभी चौक जाती है अज़ान — गाँवों से उड़ आता है
ईद का चाँद — गोद की नाव में डोलती है जिन्न परी
उन्नीसवीं सदी की नारी को नीलाग्नि-पद्मतारा पड़ता है बनना
नारी के मन की पृथ्वी सौर-लोक है — घास और माटी में नहीं बँधी रहेगी वह
स्वर के झूले, प्राचीन चमगादड़ की तरह रात-दिन असंख्य वर्षो तक जगे रहेगे
अश्वत्थ, नीम, अनार और वट-गाछ प्रेम और मिलन की कभी थाह नहीं देते
सब साम्य के पक्ष में — पर आदमी के अँधेरे में कही भी कदंब-फूल नहीं खिलता
दिलोजान स्निग्ध चाँद भी चोगे के नीचे सोया रहता है
जिन्न सोचता रहता है स्वप्नों की दुनिया में नक्षत्र की शुभ्रता ले कर
तैरती रहती है आत्मा।

भ्रमणगाड़ी-2

मिलो जब लोगों से एक ही चटाई पर
बैठ कर बीड़ी मत पीना, अब,

उठा लें वे बच्चे को गोद में
तो धो देना उसे डेटॉल के पानी से
नहलाने के बहाने —
भले ही, उसे ख़ुद भी
न हों नहलाते अपने नहाने के बाद,
भले ही वह नहाया न हो
बहुत दिनों से।
इस के बाद कविता की भाषा पर
होगी बातचीत।
पत्रिका में छपी हुई रचना पर
इस के बाद, हावड़ा स्टेशन पर
किस तरह गूँगी लड़की से हुआ
बलात्कार — इस पर,
सोच कर सिहर तुम जाओगे,
थोड़ी देर मौन रह,
बढ़ा देना कैडबरीज़!

भ्रमणगाड़ी-3

दरवाज़ा खोल कर आध घंटा—नंदन और रवीन्द्र सदन में
बैले और विदेशी फ़िल्म

राजनीति —
तुम्हारे प्रेमी और स्वामी का एक पुराना बैक-ग्राउंड भी रहा होगा,
फिर चाय पी कर विदाई दोगे
एक दिन फ़्लैट पर
झोंपड़ी मार देगी
कीचड़ सना अपना पंजा
हम लोगों का कहीं ठिया नहीं, पार्टी से आ कर कहता नक्सल—अँधेरे में
फिस-फिसा उठता यह स्वर —
प्रवहमान प्यार से बँधा रहता दिन—

तुम लोगों की नींद
कभी चुंबन
कभी लौंग इलाइची
कभी साथी की हँसी

रास्ते-रास्ते घूमना, पर उस की प्यास न बुझना
गरदन पर वृश्चिक का डंक
गरदन के भीतर से माथे के भीतर तक एक अनिश्चित
माथे की यंत्रणा में

केंवल अकेला
छोटे-छोटे पंजे, जली हुई घास पर, अँधेरे में ....

भ्रमणगाड़ी-4

ट्रेन के आग के दृश्य से बार-बार चढ़ता है नशा
बच्चों की फ़िल्म में बचपन का ख़ून होता है आज
आगंतुक के मुँह पर धड़ से दरवाज़ा बंद करना
घर न पा कर और बढ़ते हुए किराए को जान कर
उन के मच्छरों के रक्त का स्वाद समझना ही पड़ता है—
वे अब इतना क्रियेटिव नहीं रहे — सोच कर
उन के साथ और साथ-साथ चलना भी नहीं चाहते तुम
और तुम्हें कराना भी पड़ता है भद्रता बोध —
तुम्हें भी गुपचुप हिसाब करना पड़ता है — सिक्यूरिटी का
किरासिन को बदल कर गैस चूल्हे का
बैंक सेविंग देख कर अपनी हर माह
छोटा परिवार लिए अपनी तरह रहने का,
बनगाँ लोकल की भाषा — इक्कीसवीं सदी की बाड्ला नहीं है।
जलकुंभी के बीच अतर्कित तैर उठते
कटे हुए मुंड की भाँति चाहना भी अब तुम्हारी नहीं रही —
अब हर सुबह पति के चुंबन से अचानक
ऑटो पर कूद कर चढ़ना

यूनिवर्सिटी में — नए साल का
साहित्य का क्लास है।

भ्रमणगाड़ी-5

जल से उठ आती है, डूबी हुई
कब की जली गाड़ी, डूबे आदमी
की तरह, चाहते हो आँकना प्राचीनता
दग्ध शब्द की
किस तरह जलती है आग, या,
बुझती नहीं किसी भी दिन,
डूबे हुए यात्री का तैरना, फफोले
दो-एक, कहानी की इंगिति —
जानता हूँ, और नहीं जानता,
रोज़ की बाज़ी की चाल अलग मुद्रा में,
और एक बार, जली आँख, जले गाल
चमकाती हुई,
नोटिस-विहीन यह इमारत
निज के ही रक्त के क्षार से
जल जाती जीभ—और,
नहीं लौटूँगा — कभी नहीं लौटूँगा।
रहें, जो डूबे थे, रहें, डॉक्टर और तेल की खानें
पीछे रह जाते सब घर,
पीछे रह जाते है तारे,
रह जाते माँगते भिक्षा आकाश से
कुष्ठ रोगी,
तीव्र, अति तीव्र — दूर-दूर
बहुत दूर — जाती है भागती
दग्ध भ्रमणगाड़ी।

भ्रमणगाड़ी-6

मिट्टी का तेल खोजने जाने पर दिखाई देंगे कवियों के घर
बादल गरजने पर भूख टूट जाती
प्यार की बात पे याद आती है केवल फाल्गुनी राय* की
सोचता हूँ कुछ दिन और जीवित रहने पर शायद हो जाती भेंट
कुछ-कुछ झरे हुए फागुन की तरह, मायामय धीर, इधर-उधर मारे फिरते
बुड्ढे का मुँह देख कर पलायन अरब सागर में
और नुचे हुए समुद्री चिड़ियों के डैनों पर —
नारी जन्म की शेष सूर्य-आभा कौंधेगी
खोया हुआ नीड़ और अंडा आज, युद्ध का रसायन;
कलकत्ता — तुम रास्ते-रास्ते कहाँ खो जाते हो!
किसी दिन किसी कवि के नहीं,
नहीं किसी प्रेमिका के
आधुनिक काल के भी नहीं,
किसी उद्धार कल्प की सीढ़ी भी नहीं,
किसी दिन साहित्य के, बड़े घराने के भी नहीं,
किसी दिन क्रांति एवं ख़बरों की मातृभाषा नहीं
होते हो केवल गहरे अप्रेम की — केवल चढ़े धतूरे की — तरह तुम।
कलकत्ता केवल भवा पागल* का ही देश नहीं, जानता हूँ —
फिर भी कलकत्ता छिन्नमूल — विदेशियों का —
ईरानी काजल लगाए स्वप्न देखता कलकत्ता
तुम्हारे मृत विद्रोही, और जर्जर क्रांति के कलकत्ता
करबी फूल की दोपहरी की आभा वाले कलकत्ता
धीरे-धीरे मातृहीन अंधकार, उन्माद से भर कर
पागल भवा अंतहीन अभियान नृत्य करता है।

---

* अकाल मृत्यु-ग्रस्त एक प्रतिभाशाली बाङ्ला कवि

* एक प्रसिद्ध बाउल

सावित्री राजीवन

मलयाळम से अनुवाद : कवयित्री के साथ के. सच्चिदानंदन एवं
राजेन्द्र धोड़पकर

देह

मरने के बाद
तुम्हारी देह
कहाँ चली जाती है
यह पूछना नहीं चाहिए तुम्हें
क्योंकि
अनंत हैं
उस की यात्रा की संभावनाएँ

आग में
समुद्र में
आकाश में वह जा सकती है।
मिट्टी में, हवा में
बर्फ़ में वह बदल सकती है।
स्वर्ग को ताकते हुए
नरक के रथ का इंतज़ार करते हुए
उस की यात्रा हो सकती है

त्रिकालदर्शी हो कर
पीपल के पेड़ के नीचे
अशरीरी हो कर बादलों के बीच
उस का पुनर्जन्म हो सकता है।
बगीचे में प्रेम करते
प्रेमियों के रूप में
या तितली की तरह भी
उस का अवतरण हो सकता है
कभी न मरने वाली इच्छाओं की तरह
योद्धाओं के संगीत की तरह
वह धरती के चक्कर लगा सकती है।
वह देह, जिस की गर्माहट ख़त्म हो गई है

वह क्या करती है
यह पूछना नहीं चाहिए तुम्हें
क्योंकि
अनंत हैं
संभावनाएँ इस बात की कि वह क्या करेगी।

रेशम के मुलायम स्पर्श-सी
किसी पुराने गीत की सांत्वना की तरह
आलिंगन करती
रहस्यमय अँधेरे की तरह
ठंडी सुगंध की तरह
खुले हुए एकांत से आ कर
वह घर में छिप सकती है।
अपने ही पके हुए साँचे में ढल कर
सुराही की तरह
फूलदान की तरह
या मंत्र की तरह
या मिट्टी के दीये की तरह
वह पीढ़े पर जम सकती है

हार पहन कर, मुस्कुराते हुए फ़ोटो की तरह
दीवार में
जादू से ग़ायब होते हुए खरगोश की तरह
स्मृतियों में
अदृश्य हो सकती है
अनंत है
देह की संभावनाएँ

एक निश्चल देह
कहाँ घुल जाती है
चिन्ता नही करनी चाहिए तुम्हें

न सिर्फ़ जो ग़ायब हो जाता है
न सिर्फ़ जो ग़ायब हो जाती है
लेकिन जो गायब नही होते उन की तरह भी
वह धरती से चिपटी रह सकती है
अनंत है
देह की संभावनाएँ

आईना

रोज मै देखती हूँ आईना।
मेरी छोटी-छोटी आँखें
कुछ नया नहीं कहती।
वे ही छोटी-छोटी आँखें
वे ही रूखे वाल
वे ही होठ
वे ही दाँत
उस के चेहरे में नहीं है
कुछ भी नफ़रत करने जैसा।

ध्यानस्थ मुनि की शांति
दयालु की करुणा की आभा
सावित्री का दृढ़ निश्चय
यह सब
मेरे लिए बहुत जाना-पहचाना है

हवा की तरह हिलती
प्रेम की कौध
वात्सल्य की मिठास
दूध की तरह बहती
जड़ो से उखड़े झंझावात की तरह
विखरे विचार

ये सब
इस के स्वरूप हैं

मैं रोज़ आईना देखती हूँ
वे ही छोटी-छोटी आँखे
वे ही रूखे बाल
वे ही होंठ, जो भौंकते नहीं
वे ही दाँत, जो काटते नहीं
वे ही ज़ंजीरे . . .
उस के चेहरे में नहीं है
कुछ भी नफ़रत करने जैसा।

बहाली

शहर में
मेरी बहाली जो जेलर के पद पर हुई है
आकाश से और धरती से
शिक्षकों ने और बुज़ुर्गों ने आशीर्वाद दिया
बढ़ती जाए क़ैदियो की तादाद
भविष्यवाणियों और शुभेच्छाओ को पूरा करते हुए
इस गर्मी के पीपल के नीचे खड़ी
मै क़ैदियों की निगरानी करती हूँ
स्कूल से लौटे हुए बच्चे की तरह
मै सारी भाषाएँ भूल चुकी हूँ
बारिश की ताल
लोरी का राग
दरवाज़े के बाहर है
आँगन में झरे हुए फूल
और चिड़िया
स्मृति के पार है।

दिवास्वप्नों और सहानुभूति से भरी आँखें
चश्मे के पीछे सूख चुकी है।
कुछ बचा नहीं है खिलने को
खेतों में उगाने को कुछ नया नहीं है
शहर में
मेरी बहाली जेलर के पद पर हुई है।

पहाड़ की चोटी पर एक घर
जलने के लिए एक पड़ोसी
पालने के लिए एक बिल्ला
दिल का सब से नया मॉडल शो-केस में
नया ख़रीदा रेफ़्रिजिरेटर बच्चों की कोमल टाँगें और
पति के पंख रखने के लिए

अब
जेल की चाबी रखने के लिए
मैं एक बक्सा बना रही हूँ
सात खनों वाला एक बक्सा

शहर में
मेरी बहाली जेलर के पद पर हुई है।

ढलान

चार बजे की तिरछी धूप
खपरैल की छत पर
एक बोलता कव्वा
हस्तरेखाएँ देखने वाले ज्योतिषी की-सी आँख वाला
कव्वे के साथ बैठती है उस की छाया भी
तिरछी

आँगन में
एक काँपते हाथ जैसी
नारियल के पते की तिरछी छाया
मेरे कमरे में
खिड़की की सलाख़ों की इकहरी छायाएँ
वे भी तिरछी

दरवाज़े के बाहर
चलता एक अजनबी
क्यों उस के क़दमों की आवाज़ भी
तिरछी
कव्वे की भविष्यवाणियाँ
समुद्री हवा की गुनगुनाहट
राह चलते आदमी के क़दमों की आवाज़
क्यों सब तिरछे?

मुझे शक होता है
आख़िरकार
मेरी मेज़ पर
पृथ्वी अपनी धुरी पर तिरछी
मैं इस पर बैठी हूँ सीधी
जब इस तिरछी धरती पर
हर चीज़ तिरछी
क्यो सिर्फ़ मै
बैठी हूँ सीधी?

बाघ का खेल

दादा ज़मीन्दार थे
उन्होने कभी तलवार नहीं उठाई, अपना जाल नही बिछाया
कभी लगान वसूल नही किया

दादा की आँखों से करुणा बहती थी।
भूखे के लिए रोटी
प्यासे के लिए मधु
ब्राह्मण के लिए गाय
अतिरिक्त ज़मीन
अतिरिक्त कपड़े
दान के लिए
अपना कवच छोड़े हुए नायक की तरह
दादा असहाय के मददगार थे

जिस चोर ने दादा का मुक़ाबला किया
उसे भेंट में मिला चाँदी का दीपक और पवित्र हृदय
जिस गुस्सेबाज़ आदमी ने दादा से झगड़ा किया
शांति मंत्र से उस का सामना किया
जिस पड़ोसी ने दादा का विरोध किया
उस पड़ोसी को अपनी ही तरह प्यार किया
कायर के लिए एक सारथी
भैंस के लिए एक बीन
यह सब दिया उन्होंने
जो अशरण के साक्षी थे
लेकिन,
शिकार का उन्हें शौक़ नहीं था मगर
और हालाँकि वे कभी शिकार पर नहीं गए
शहर मे या जंगल मे
स्वप्न में या जागृति में
दादा के पोते को
बतौर खिलौने के एक बंदूक़ मिली
एक बार
खेल के बीचोबीच
अपने पोते के हाथ से गोली खा कर
दादा चल बसे

अब
दादा के पोते का शौक़
बाघ का खेल

खिड़की

मैं
सिर्फ़ एक खिड़की खोलती हूँ
दिन, सफ़ेद कबूतर-सा
खिड़की की सलाख़ों पर आ बैठता है
अभी-अभी जागे हुए बच्चे के साथ
दिन
माँगता है यह और वह और सब
अख़बार आ गिरते हैं
दूधवाला घंटी बजाता है
स्कूल बस भोंपू बजाती है
आलसी आदमी को पहाड़ उठाना पड़ता है
दिन
सफ़ेद कबूतर-सा

मैं सिर्फ़ एक खिड़की खोलती हूँ
आशा
एक सिसकती हुई नदी की तरह
सड़क पर बहती है।
पीपल के चबूतरे और मंदिर की प्रदक्षिणा करती हुई
दोपहर की धूप उतरती है
तीन आदमियों के साथ एक हाथ-गाड़ी गुज़रती है
स्कूली बच्चा अपने पाठ के संग भागता है
एक आदर्श गुज़रता है खादी का कुर्ता पहन कर
आशा
एक सिसकती हुई नदी की तरह

मै
सिर्फ़ एक खिड़की खोलती हूँ
रौशनी
एक नप्ट हो चुकी दोस्ती की तरह
पश्चिम की ओर जाती है
दादा की तरह
उस की भी टाँगें शाम में पसरी हैं
वह मेरी बेचैनी पर फैल जाती है।
रंगीन मैना
चारदीवारी पर से
पड़ोसी के घर में उड़ जाती है।
एक ख़ैरियत अपने को फैलाती है छाया के साथ
एक बर्तन टूटता है
एक दरवाज़ा बंद होता है।
रौशनी
एक नप्ट हो चुकी दोस्ती की तरह . . .

मै
सब खिड़कियाँ खोल देती हूँ
आँखें
अँधेरे की सीढ़ियाँ चढ़ती है
मध्यरात्रि के फूल के साथ
एक दीया जलता है
एक रौशनी तेज़ होती है

उत्पत्ति

उन्होने मुझ से पूछा
औरत
दिन में जब बच्चो की मुस्काने खिली थीं
धूप में,जिस मे किसी नौजवान के सपने फूले थे

रात में भी,जिस मे माँ की उम्मीदें घुली थीं
तू ने क्या किया
उन्होंने मुझ से पूछा

रसोई के ओसारे में बैठ कर
मैं ने
हज़ारों रोटियाँ और दाख-रस तैयार किया
तुम्हें पता नहीं

उन्होंने मुझ से पूछा
जब ख़ून पानी में मिल कर
पानी दाख-रस में मिल कर
सड़कों पर बह रहा था
औरत
तू ने क्या किया

मैदानों से दूर
दालानों से दूर
मै ने सफ़ेद कबूतर उड़ाए
तुम ने देखा नहीं

उन्होंने मुझ से पूछा
औरत
जब तेरे पक्षी बड़े-बड़े फल चो और काट रहे थे
जब वे अपनी फ़सल का जश्न मना रहे थे
तू ने क्या किया

अपनी आँखो पर पट्टी बाँधे गांधारी
उत्साह के उत्सव से मुक्ति चाहती
तुम ने देखा नही

उन्होंने मुझ से पूछा
तुम ने क्या किया

उन राजाओं के लिए
जो लौट रहे थे विजय के मद में
बलियों के बाद

बकरे का मांस और दाख-रस परोस कर
मैं ने रात की दावत तैयार की
तुम ने देखा नहीं

उन्होने मुझ से पूछा
औरत,
सिंहासन और क्रूस के लिए
बलियों और कबूतरों के लिए
प्रार्थना गाते हुए
तेरे थके हुए गले में
क्या बाक़ी रहा

जबकि उस के चेलों ने उसे छोड़ दिया था
न्यायाधीशों ने हाथ धो लिए थे
और दुश्मनों ने उसे कई बार क्रूस पर चढ़ाया
पुनरुत्थान
मेरे बेटे का
तुम नहीं देखते?
और तुम मुझे भी नहीं देखते ?

परिचय

अनुवाद कार्यशाला में शामिल कवि, अनुवादक एवं संयोजक हिन्दी कवि

असमिया

हीरेन भट्टाचार्य: जन्म 28 जुलाई 1932। साहित्य अकादेमी पुरस्कार, राजाजी पुरस्कार, सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार, असम साहित्य सभा पुरस्कार से सम्मानित। चित्रकला, संगीत, बाग़वानी में गहरी रुचि। *मोर देश मोर प्रेमोर कविता, विभिन्न दिनोर कविता, सुगंधि पाखीला* इत्यादि कविता-संग्रह। बच्चों के गीत भी।

पापोरी गोस्वामी: जन्म 18 सितंबर 1965। दर्शन शास्त्र एवं हिन्दी में एम. ए.। असमिया-बाङ्ला से हिन्दी अनुवाद, पत्रकारिता, लोकसंगीत-कला में रुचि।

अरुण कमल: जन्म 15 फ़रवरी 1954। प्रसिद्ध हिन्दी कवि। अंग्रेज़ी के रीडर। *अपनी केवल धार* और *सबूत* कविता-संग्रह के अलावा आलोचना एवं अनुवाद प्रकाशित। अनेक पुरस्कार।

बाङ्ला

अनुराधा महापात्र: जन्म 30 जून 1957। पर्यावरण, विस्थापित-पुनर्वास तथा अन्य सामाजिक कार्यों में सक्रिय। संगीत, चित्रकला, वास्तुशिल्प में रुचि। *छाइफूल, अभिलाषा मणिकर्णिका, जन्मातिके अंधबंधने* (कविता-संग्रह); दो गद्य-संग्रह प्रकाशित।

समीरबरन नंदी: जन्म 5 नवंबर 1956। बाङ्ला से अनुवाद। अध्यापक, कवि।

प्रयाग शुक्ल: जन्म 28 मई 1940। प्रसिद्ध हिन्दी कवि, कला-समीक्षक, कथाकार, आलोचक, पत्रकार। छह कविता-संग्रह, चार कथा-संग्रह, दो उपन्यास तथा कला-दृष्टि पर एक पुस्तक *देखना* प्रकाशित। बाङ्ला और अंग्रेज़ी से अनुवाद।

गुजराती

गुलाम मोहम्मद शेख: जन्म 1937। चित्रकार। देश-विदेश मे अनेक प्रदर्शनियाँ तथा पुरस्कार। लंबे अरसे तक कला-अध्यापन। कविता-संग्रह *अथवा* प्रकाशित।

वर्षा दास: जन्म 9 नवंबर 1942। हिन्दी, गुजराती, ओड़िया, अंग्रेज़ी, बाङ्ला आदि अनेक भाषाओं में अनुवाद, संपादन, लेखन। फ़िल्म-निर्माण। बच्चों का साहित्य, यात्रावृत्त, जीवनीपरक पुस्तकें, कला-समीक्षा। गुजराती में कथा-संग्रह *कनुप्रिया, अमेरिकानी अनुभव यात्रा* (गुजराती, यात्रावृत्त)। बच्चों के लिए लेखन।

विष्णु नागर: जन्म 14 जून 1950। प्रसिद्ध हिन्दी कवि। तीन कविता-संग्रह, दो कथा-संग्रह, रघुवीर सहाय (सह-संपादित आलोचना) प्रकाशित। पत्रकार। संगीत और चित्रकला में रुचि।

कन्नड

सिद्धलिंगैया: जन्म 3 फ़रवरी 1954। दलित-लेखन के अग्रणी। विधान परिषद के सदस्य। कन्नड के प्रोफ़ेसर। *होलेमाडिगारा हाडु, सविरारु नाडिगलु, कप्पु कडिना हाडु* (कविता-संग्रह); *हक्किनोता* और *अवत्रागार* (निबंध-संग्रह); *एकलव्य* और *पंचम* (नाटक) प्रकाशित।

अजय कुमार सिंह: जन्म 7 अप्रैल 1952। हिन्दी में एक कविता-संग्रह और अनेक कन्नड कवियों के अनुवाद पत्रिकाओं में प्रकाशित। कथाकार। पुलिस अधिकारी।

इब्बार रब्बी: जन्म 2 मार्च 1941। प्रसिद्ध हिन्दी कवि। दो कविता-संग्रह प्रकाशित। पत्रकार, आलोचक।

मलयाळम

सावित्री राजीवन: जन्म 5 जुलाई 1955। एक कविता-संग्रह *चोरिवु* प्रकाशित। कथा-लेखिका। चित्रकला में रुचि। पत्रकारिता-संपादन।

के. सच्चिदानंदन: जन्म 28 मई 1946। प्रसिद्ध मलयाळम कवि, आलोचक। अनेक कविता-संग्रह, आलोचना-ग्रंथ प्रकाशित। इंडियन लिटरेचर के सपादक।

राजेन्द्र धोड़पकर: जन्म 11 अगस्त 1956। युवा हिन्दी कवि। पत्रकार एवं व्यंग चित्रकार। दीक्षा से चिकित्सक। एक कविता-संग्रह प्रकाशित। मराठी, अंग्रेज़ी से अनुवाद।

मराठी

अरुण कोलटकर: जन्म 1932। ग्राफ़िक कलाकार। अंग्रेज़ी एवं मराठी में अनेक कविता-संग्रह, देशी-विदेशी भाषाओं में कविता के अनुवाद प्रकाशित। कॉमनवैल्थ पोएट्री प्राइज़, गोखले पुरस्कार आदि प्राप्त। *जेजूरी* (अंग्रेज़ी मे), *अरुण कोलटकरच्या* (मराठी) कविता-संग्रह।

चंद्रकांत पाटील: जन्म 3 सितंबर 1944। मराठी में चार और हिन्दी में एक कविता-संग्रह, मराठी मे चार आलोचना-ग्रंथ, मराठी और हिन्दी में अनेक अनूदित पुस्तकें, बाल-पुस्तकें। 1991 मे साहित्य अकादेमी अनुवाद पुरस्कार, अनेक अन्य पुरस्कार। वनस्पति विज्ञान के प्राध्यापक।

विष्णु खरे: जन्म 9 फ़रवरी 1940। प्रसिद्ध हिन्दी कवि, आलोचक, पत्रकार। *ख़ुद अपनी आँख से* और *सबकी आवाज़ के पर्दे में* (कविता-संग्रह), आलोचना पुस्तक, देशी-विदेशी अनेक कवियों के अनुवाद। संगीत, पुरातत्व, फ़िल्म में गहरी रुचि।

ओड़िया

प्रवासिनी महाकुड़: जन्म 24 नवंबर 1957। ओड़िया में एक उपन्यास, एक कविता-संग्रह प्रकाशित। तीन अन्य पुस्तकें शीघ्र प्रकाश्य। अनेक पुरस्कार।

दीप्ति प्रकाश महापात्र: जन्म 31 जुलाई 1967। ओड़िया कथाकार, अनुवादक, नाट्यकार, फ़िल्मालोचक।

प्रभात त्रिपाठी: जन्म 14 सितंबर 1941। प्रसिद्ध हिन्दी कवि-आलोचक। *खिड़की मे बरसात, नहीं लिख सका* (कविता-संग्रह), *अनात्मकथा* (उपन्यास) तथा अन्य अनेक उपन्यास, आलोचना-ग्रंथ, ओड़िया से अनुवाद प्रकाशित। प्राध्यापक।

पंजाबी

सुरजीत पातर: जन्म 15 फ़रवरी 1944। पंजाबी में तीन कविता-संग्रह प्रकाशित: *हवा विच लिखे हरफ़, बिर्ख अर्ज़ करे, हनेरे विच सुलगदी वर्णमाला...।* लोर्का, ब्रेख़्त तथा गिरीश कार्नाड के नाटकों के अनुवाद। अध्यापक।

मोहनजीत: जन्म 7 मई 1938। पंजाबी के विख्यात कवि, पाँच संग्रह प्रकाशित। पंजाबी अकादेमी पुरस्कार। पंजाबी के प्राध्यापक। अनुवादक।

वीरेन डंगवाल: जन्म 5 अगस्त 1948। प्रसिद्ध हिन्दी कवि। *इसी दुनिया में* कविता-संग्रह। प्राध्यापक, पत्रकार, अनुवादक। दो पुरस्कार।

तमिष़

सुकुमारन: जन्म 11 जून 1957। *कोडैक्कव्ळ कुरुप्पिगव्ळ* और *पयानिन संगीतगव्ळ* कविता-संग्रह प्रकाशित। मलयाळम और अंग्रेज़ी से तमिष़ में अनुवाद। फ़िल्म और संगीत पर लेखन, पत्रकारिता, आलोचना।

एन. वालसुब्रह्मण्यन: जन्म 4 अगस्त 1932। गणितज्ञ, कंप्यूटर तथा सुरक्षा विशेषज्ञ। अनेक शोधपत्र प्रकाशित। तमिष़, संस्कृत, अंग्रेज़ी, हिन्दी में लेखन तथा अनुवाद।

विमल कुमार: जन्म 9 दिसम्बर 1960। युवा हिन्दी कवि। *सपनों में एक औरत से बातचीत* कविता-संग्रह। पुरस्कृत। पत्रकार।

तेलुगु

ए. जयप्रभा: जन्म 29 जुलाई 1957। *सुर्युडु कूडा उदयिस्ताडु, युद्धोन्मुखंगा, वामनुडु मूडो पादम, इक्कडा कुरिसियाना वर्षम एक्कडि मेघनिडि?, यशोधरा ई वागपेण्डुके* कविता-संग्रह प्रकाशित। दो समीक्षात्मक पुस्तकें। अध्यापन।

पी. वी. नरसा रेड्डी: जन्म 1 जुलाई 1945। *आधुनिक तेलुगु साहित्य* तथा एक कहानी-संग्रह और अनेक पुस्तकें हिन्दी में। दो पुरस्कार। अनुवाद। पुस्तकालयाध्यक्ष।

देवीप्रसाद मिश्र: जन्म 18 अगस्त 1958। युवा हिन्दी कवि। *प्रार्थना के शिल्प में नहीं* (कविता-संग्रह)। पुरस्कृत। पत्रकार।